पूर्वांचल खेती

वर्ष : 31 दिसम्बर 2021 अंक : 12

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वांचल खेती

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वाञ्चल खेती

वर्ष 31 | दिसम्बर, 2021 | अंक 12

संरक्षक

डॉ. बिजेन्द्र सिंह

कुलपति

प्रधान सम्पादक

प्रो. ए. पी. राव

निदेशक प्रसार

तकनीकी सम्पादक

डॉ. आर. आर. सिंह

प्राध्यापक, मृदा विज्ञान

मो. नं. 9450938866

सम्पादक मण्डल

डॉ. अनिल कुमार

सहायक प्राध्यापक, प्रक्षेत्र प्रबन्ध

डॉ. वी. पी. चौधरी

सहायक प्राध्यापक, पादप रोग

डॉ. पंकज कुमार

सहायक प्राध्यापक, कीट विज्ञान

सम्पादक

उमेश पाठक

मोबाइल नं. 9415720306

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखक के निजी हैं। प्रकाशक/सम्पादक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है

विषय सूची

बॉक्स सूचनाएं

पूर्वाञ्चल खेती पढ़िये, आगे बढ़िये 19

लेखकों से अनुरोध 27

प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

विश्वविद्यालय के कार्य क्षेत्र में स्थापित विभिन्न कृषि विज्ञान/ज्ञान केन्द्र एवं अनुसंधान केन्द्र

क्र. सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	वरिष्ठ वैज्ञानिक/अध्यक्ष/ प्रभारी अधिकारी	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	वाराणसी	डॉ. संजीत कुमार	9837839411	05542–248019
2.	बस्ती	डॉ. एस. एन. सिंह	9450547719	05498–258201
3.	बलिया	डॉ. रवि प्रकाश मौर्य	9453148303	–
4.	फैजाबाद	डॉ. शशिकान्त यादव	9415188020	05278–254522
5.	मऊ	डॉ. एस. एन. सिंह चौहान	–	0547–2536240
6.	चंदौली	डॉ. एस. पी. सिंह	9458362153	0541–2260595
7.	बहराइच	डॉ. एम. पी. सिंह	9415172725	05252–236650
8.	गोरखपुर	डॉ. सतीश कुमार तोमर	9415155818	–
9.	आज़मगढ़	डॉ. के. एम. सिंह	9307015439	–
10.	बाराबंकी	डॉ. शैलेश कुमार सिंह	9455501727	
11.	महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	9451430507	–
12.	जौनपुर	डॉ. सुरेश कुमार कनौजिया	9984369526	–
13.	सिद्धार्थनगर	डॉ. एल. सी. वर्मा	7376163318	05541–241047
14.	सोनभद्र	डॉ. पी. के. सिंह	9415450175	–
15.	बलरामपुर	डॉ. वी. पी. सिंह	9839420165	–
16.	अम्बेडकरनगर	डॉ. रामजीत	9918622745	–
17.	संतकबीरनगर	डॉ. अरविन्द सिंह	9415039117	–
18.	अमेठी	डॉ. रतन कुमार आनन्द	9838952621	–
19.	बहराइच (नानपारा)	डॉ. विनायक शाही	8755011086	–
20.	मनकापुर–गोण्डा	डॉ. ओम प्रकाश	9452489954	–
21.	बरासिन–सुल्तानपुर	डॉ. एस. के. वर्मा	9450885913	–
22.	अमहित–जौनपुर	डॉ. नरेन्द्र रघुवंशी	–	–
23.	गाजीपुर	डॉ. आर. सी. वर्मा	9411320383	–

विश्वविद्यालय के कृषि ज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	अमेठी	डॉ. शशांक शेखर सिंह	–	–
2.	गोण्डा	डॉ. ए. पी. राव	9415720376	–
3.	देवरिया	श्रीमती सरिता श्रीवास्तव	9415419712	–
4.	गाजीपुर	डॉ. ए. पी. राव	9415720376	–

विश्वविद्यालय के अनुसंधान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि अनुसंधान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाषा कार्यालय
1.	मसौधा, फैजाबाद	डॉ. डी. के. द्विवेदी	7706884188	05278–254153
2.	तिसुही, मिर्जापुर	डॉ. एस. के. सिंह	9450164714	05442–284263
3.	बसुली, महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	9451430507	–
4.	घाघरा घाट, बहराइच	डॉ. तेजेन्द्र कुमार	9415560503	0525–235205
5.	बड़ा बाग, गाजीपुर	डॉ. सी. पी. सिंह	9628631637	–
6.	बहराइच	डॉ. गजेन्द्र सिंह	7379576412	0548–223690

डॉ. बिजेन्द्र सिंह
कुलपति

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या-224 229 (उ.प्र.), भारत
टेलीफैक्स : 05270-262821
फैक्स : 05270-262821

सम्पादकीय

प्रसार निदेशालय द्वारा पूर्वी उत्तर प्रदेश के किसानों व ग्रामीणों के सामाजिक व आर्थिक विकास की दृष्टि से उनकी कृषि आधारित आय में वृद्धि के लिये उन तक नवीनतम कृषि तकनीकें पहुॅचाने हेतु मासिक पत्रिका पूर्वांचल खेती का प्रकाशन किया जाता है। इस पत्रिका के माध्यम से कृषि व कृषि आधारित उद्यमों से सम्बन्धित सम सामयिक वैज्ञानिक लेखों का प्रकाशन इस पत्रिका की विशेषता है। मै पत्रिका के प्रकाशक निदेशक प्रसार व उनकी टीम के सदस्यों समेत लेखकों व वैज्ञानिकों के इस सराहनीय प्रयास के लिये बधाई व शुभकामनायें देता हूँ। इसी दिसम्बर माह में विश्वविद्यालय का 23वॉ दीक्षान्त समारोह भी आयोजित किया जा रहा है। दीक्षान्त समारोह में विश्वविद्यालय के विद्यार्थी अपनी शिक्षा पूर्ण कर उपाधि प्राप्त करेंगे साथ ही प्रतिभाशाली व मेधावी विद्यार्थियों को पदक भी प्रदान किये जायेंगे। इस अवसर पर मै सभी उपाधि प्राप्तकर्ता छात्र–छात्राओं को उज्जवल भविष्य के लिये अपनी शुभकामनायें व मंगलकामनायें देता हूँ।

(बिजेन्द्र सिंह)
कुलपति

प्रो. ए. पी. राव
निदेशक प्रसार

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या-224 229 (उ.प्र.), भारत
टेलीफैक्स : 05270-262821
फैक्स : 05270-262821

सम्पादकीय

पूर्वांचल खेती के इस अंक में रबी की फसलों के प्रबन्धन व बचाव के साथ–साथ पशुपालन की उन्नत तकनीकी से सम्बन्धित लेख कृषकों, कृषि प्रसार कार्यकर्ताओं व ग्रामीण युवाओं के ज्ञान व क्षमता को अद्यतन करने की दृष्टि से प्रकाशित किये जा रहे हैं। हमारे कृषक व ग्रामीणजन आशा है कि इन लेखों का लाभ अपने कृषि व ग्रामीण जीवन की बेहतरी के लिये उठा सकेंगे। इसी माह में हमारे विश्वविद्यालय का 23वॉ दीक्षान्त समारोह आयोजित किया जा रहा है। मै दीक्षान्त समारोह में विश्वविद्यालय के विभिन्न महाविद्यालयों से अपनी शिक्षा पूर्ण कर रहे सभी विद्यार्थियों को अपनी बधाई व उनके उज्जवल भविष्य के लिये शुभकामनायें भी देता हूॅ।

(ए.पी. राव)

गेहूँ की फसल में खरपतवार नियंत्रण

कुलदीप सिंह एवं डॉ राम प्रताप सिंह

गेहूँ के खरपतवार में प्रमुख रूप से संकरी पत्ती वाले खरपतवार जैसे मंडूसी, कनकी, गुल्ली+डंडा, जंगली जई, पोआ घास, लोमड़ घास और चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे बथुआ, खरथुआ, जंगली पालक, मैना, मोथा, सोंचल, मालवा, मकोय, हिरनखुरी, कंडाई, कृष्णनील, प्याजी, चटरी–मटरी आदि पाये जाते हैं। भारत में रबी फसल का सबसे भंयकर खरपतवार मंडूसी है जिसे गुल्ली डंडा या कमकी भी कहा जाता है। यह मुख्यतः धान–गेहूँ फसल चक्र का खरपतवार है इसका जन्म स्थान मेडीटरेनियन माना जाता है। इनकी अधिकता से गेहूँ की पैदावार में 35 से 40 प्रतिशत तक कमी आती है। समय रहते खरपतवार पर नियंत्रण करना बहुत जरूरी है।

खरपतवार प्रबंधन

शस्य विधियों द्वारा

गेहूँ की ऐसी किस्म का चुनाव करें जिसकी बढ़त उद्यमी हो जो शीघ्रता से जमीन को ढक ले, और प्रारम्भिक अवस्था में उगने वाले खरपतवरों को अच्छी प्रतिस्पर्धा दे। गेहूँ की फसल के साथ उगने वाले खरपतवार अधिकतर मौसमी हैं, जिसका जमाव निश्चित तापमान पर ही होता है जैसे मडूंसी का जमाव आमतौर पर नवम्बर के आखिरी सप्ताह से शुरू होता है। कुछ खरपतवार गेहूँ के बीजों के साथ ही अंकुरित हो जाते हैं कुछ खरपतवार पहली सिंचाई के बाद अंकुरित होते हैं। इसलिए गेहूँ की बुआंई को नवम्बर 5 तक पूरी कर लें क्यूंकि इस समय का तापमान मडूंसी के जमाव के अनुकूल नहीं होता, जिससे मडूंसी का प्रकोप कम रहता है।

फसल चक्र अपनाएं

विभिन्न प्रकर की फसलों को फसल चक्र में शामिल करने से खरपतवारों का जीवन चक्र टूटता है। फसलों के बदलने से उनकी शस्य क्रियायें बदलती हैं उनमें प्रयोग होने वाले खरपतवारनाशी बदलते हैं। उदाहरणतः धान गेंहूं फसल चक्र में बरसीम, मटर, सब्जियां, तोरिया, सूरजमुखी जैसी फसलों को गेहूँ के बदले में उगाकर मडूंसी के प्रकोप व खरपतवारनाशी की प्रतिरोधी क्षमता के विकसित होने से बचा जा सकता है। बुनियादी खाद को बीज से 2–3 से.मी. गहरा डालें। जीरों टिलेज से गेहूँ की बिजाई करने से गेहूँ का जमाव जल्दी होता है और मिट्टी की ऊपरी सतह को न छेड़ने की वजह से मंडूसी का जमाव कम होता है। स्टेलबेड विधि से खाली खेत की सिंचाई करके खरपतवारों को जमने का मौका दिया जाता है। इन उगते हुए खरपतवारों को जुताई करके या नान सेलेक्टिव खरपतवारनाशी जैसे ग्लायफोसेट का 1 प्रतिशत घोल स्प्रे कर के खत्म किया जा सकता है। फिर इस खरपतवार मुक्त खेत में गेहूँ की बिजाई की जा सकती है। रासायनिक तत्वों के पोषण व पानी का विभाजन खरपतवार व फसल में होता है इसलिए खाद का प्रयोग खरपतवार नियत्रण के बाद करें ताकि इनका लाभ गेहूँ को मिले न की खरपतवरों को।

रासायनिक खरपतवार नियंत्रण

खरपतवारनाशी रसायन आधुनिक कृषि विज्ञान की आवश्यकता है। खरपतवारनाशी रसायन द्वारा खरपतवार प्रबंधन करना मजदूरों द्वारा, यंत्रों द्वारा, शारीरिक श्रम शक्ति से अधिक मितव्ययी है।

गेहूँ में खरपतवारनाशी का प्रयोग दो तरह से किया जा सकता है:–

शोध छात्र एवं शस्यविद (शस्य विज्ञान विभाग) आचार्य नरेन्द्रदेव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या 224229 (उ.प्र.)

सारिणी–1

खरपतवारनाशी का नाम	खरपतवार नियंत्रण	मात्रा (ग्राम/ मिग्रा/एकड़)
क्लोडिनोफोप (टॉपिक पॉइंट, झटका)	संकरी पत्ती	160 ग्राम
पिनोक्साडेन (एक्सिल 5 ईसी)	संकरी पत्ती	400 मिली
फिनोक्साप्रॉप (प्युमा पॉवर)	संकरी पत्ती	400 मिली
मेटसुल्फुरोन (अलग्रिप)	चौड़ी पत्ती	8 ग्राम
कारफेन्टाजोन (एफिनिटी)	चौड़ी पत्ती	20 ग्राम
2,4–डी (वीडमार)	चौड़ी पत्ती	500 मिली
आईसोप्रोट्यूरॉन (आईसो गार्ड 75 डब्ल्यू पी)	संकरी एवं चौड़ी पत्ती	500 ग्राम
सल्फोसल्फ्यूरॉन (लीडर, एस एफ 10, सफल)	संकरी एवं चौड़ी पत्ती	13 ग्राम
सल्फोसल्फ्यूरॉन+ मेटसुल्फुरोन (टोटल, वेस्टा	संकरी एवं चौड़ी पत्ती	16 ग्राम
मिसोसल्फ्यूरॉन+आईडो सल्फ्यूरॉन (अटलांटिस)	संकरी एवं चौड़ी पत्ती	160 ग्राम
फिनोक्साप्रॉप+मेट्रीब्यूजीन (एकार्ड प्लस)	संकरी एवं चौड़ी पत्ती	500 से 600 मिली
पेन्डीमिथालिन (स्टाम्प)	संकरी एवं चौड़ी पत्ती	1500 मिली

1) प्री एमरजेंस खरपतवार नाशी

गेहूँ बिजाई के तुरन्त बाद पेंडामेथेलीन 3.3 लीटर प्रति हे. की दर से 500 लीटर पानी में घोल कर स्प्रे करने से उगती हुई खरपतवारों का नाश किया जा सकता है। पेंडामेथेलीन से शुरूआती फसल की मडूंसी व बाथू का निंयत्रण किया जा सकता है।

2) पोस्ट एमरजेंस खरपतवार नाशी

गेहूँ में पोस्ट एमरजेंस खरपतवारनाशी का प्रयोग पहली सिंचाई (बुआई के 21 दिन) के 7–10 दिन बाद जब खेतों में पैर टिकने लगे और खरपतवार 2–4 पत्ती अवस्था में हो तभी किया जाता है। क्लोडीनापोप तो पत्तियों दवारा ही सोखा जाता है इसलिए स्प्रे के समय गेहूँ की फसल में खरपतवार 2–4 पत्ती अवस्था में होने से ही स्प्रे का लाभ मिलता है। प्रायः यह भी देखा गया है कि गेहूँ की इस अवस्था में तापमान बहुत कम होता है कम तापमान में खरपतवार पत्ते खरपतवारनाशी को अपने अन्दर अवशोषित करने की क्षमता नहीं रखते जिस कारण खरपतवारनाशी का लाभ नहीं मिलता।

ध्यान देने योग्य बातें

1) गेहूँ की खरपतवार रोकथाम के लिए हमेशा खरपतवार रहित गेहूँ के बीज का उपयोग करें।

2) खरपतवारनाशी की सही मात्रा, सही समय एवं उपयुक्त तकनीक द्वारा छिड़काव करें।

3) गेहूँ के खरपतवार नियंत्रण हेतु खरपतवारनाशी को' अदल–बदल कर प्रयोग में लाएं।

4) फसल चक्र में चारे वाली फसलें जैसे बरसीम, जई इत्यादि का समायोजन अवश्य करें।

5) गेहूँ के खरपतवार हेतु उपयुक्त छिड़काव करने के लिए फ्लैट फेन नोजल का प्रयोग करें।

6) शाकनाशी प्रतिरोधकता नियंत्रण के लिए ग्लाईफोसेट + पेंडामेथेलीन का प्रयोग शून्य कृषण द्वारा बुवाई से पूर्व करें।

7) जहां भी क्लोडिनाफॉप व सल्फोसल्फ्यूरॉन से प्रतिरोधकता आ गई हो, वहाँ पेंडामेथेलीन, एकार्ड प्लस और पिनोक्साडेन का उपयोग करें।

8) एकार्ड प्लस (फिनोक्साप्रॉप+मेट्रीब्यूजीन) का प्रयोग पी बी डब्ल्यू 550 और डब्ल्यू एच 542 किस्मों में न करें।

9) क्लोडिनाफॉप या फिनोक्साप्रॉप या पिनोक्साडेन को 2, 4–डी के साथ न मिलाएं। 2, 4–डी का छिड़काव इनके छिड़काव के एक सप्ताह पश्चात करें।

10) गेहूँ के खरपतवार नियंत्रण हेतु रासायनिक दवाओं का छिड़काव बुवाई के 30 से 35 दिन के अंदर ही करें।

11) गेहूँ में खरपतवार के बीज न पनपने दें।

पॉलीहाउस में शिमला मिर्च की खेती

अश्वनी कुमार सिंह एवं शैलेश कुमार सिंह

भारत में शिमला मिर्च की व्यावसायिक खेती हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में की जाती है। इसे मीठी मिर्च, घंटीनुमा मिर्च तथा शिमला मिर्च के नाम से जाना जाता है। इसमें विटामिन ए, बी, एवं सी टमाटर से अधिक पायी जाती है। तीखापन रहित होने के कारण इसे कच्चा या सलाद के रूप में भी खाया जा सकता है।

उन्नतशील किस्में

हमारे देश में उगाई जाने वाली शिमला मिर्च की किस्में मुख्यतः बाहर से आयातित किस्में हैं। इसकी खेती बहुत ही सीमित क्षेत्रों में की जाती है। इसी कारण इसकी नयी किस्मों के विकास के अनुसंधान कार्य पर कम जोर दिया गया है। अब तक मुख्य रूप से उगाई जाने वाली किस्में कैलीफोर्निया वंडर और चाइनीज जाइंट थी। कुछ क्षेत्रों में बुलनोज, यलों वंडर, रूबी किंग, किंग आप नाथ, अर्ली जाइंट, वर्ड बीटर, हंगेरियन वैक्स आदि की भी खेती की जाती रही है।

पौध तैयार करना

शिमला मिर्च की अगेती,/बेमौसमी फसल लेने के लिए शिमला मिर्च के बीज को जनवरी–फरवरी माह में बो देना चाहिये। पौध तैयार करने के लिए 98 छिद्रो वाली प्रो–ट्रे (प्लास्टिक की ट्रे) का प्रयोग करना चाहिये। इस प्रो–ट्रे का आकार सामान्यतः 54 से.मी. लम्बा एवं 27 से.मी. चौड़ा होता है। सड़ी हुई गोबर की खाद एवं निर्जीवीकृत मिश्रण को रोगमुक्त पौध उगाने के लिए किया जाना आवश्यक होता है। परम्परागत मिश्रण, मिट्टी, गोबर की खाद, बालू के स्थान पर कोको पीट, वरमीकुलाइट, बालू या परलाइट मिश्रण का प्रयोग किया जा सकता है। यह रोगमुक्त होने के साथ–साथ अत्यन्त भुरभुरा होता है, जिससे जड़ों का विकास अच्छे से होता है। सामान्यतः 400 किग्रा. कोकोपीट से लगभग 400 प्रो–ट्रे भरा जा सकता है। ट्रे के एक छिद्र में एक बीज डालकर कोकोपीट से बीज को ढक देना चाहिये इसके तदुपरान्त हजारे की सहायता से हल्की सिंचाई कर इसे प्लास्टिक फिल्म से ढक देना चाहिये जिससे बीज का अंकुरण आसानी से हो सके। अंकुरण सामान्यतः 6–8 दिनों में हो जाता है। अंकुरण के उपरान्त पॉलीथीन फिल्म को हटा देना चाहिये। पौध 4 से 6 सप्ताह मे रोपण हेतु तैयार हो जाती है।

क्यारियों की तैयारी

सबसे पहले पॉलीहाउस में मिट्टी की खुदाई के उपरान्त ढेलों को तोड़कर जमीन को भुरभुरा, समतल एवं मुलायम बनाया जाता है। 10 से.मी. चौड़ी और 45 से.मी. ऊँची क्यारियाँ बनायी जाती हैं, तथा कतारों के मध्य 50 से.मी. का फासला छोड़ दिया जाता है। सड़ी हुई गोबर की खाद 20 किग्रा. तथा नीम की खली 400 ग्रा. प्रति वर्ग मी. में डालकर मिट्टी में अच्छी तरह मिलाया जाता है। 4 प्रतिशत फॉरमल्डीहाइड से (4 ली. प्रति वर्ग मी.) क्यारियों को गीला किया जाता है। सभी क्यारियों को चार दिनों तक काली प्लास्टिक की चादरों से ढककर पॉलीहाउस की खिड़की दरवाजे बंद कर देना चाहिए ताकि हानिकारक रोगाणुओं का नाश हो जाये।

चार दिनों के बाद पॉलीथीन की फिल्म हटा देते हैं, जिससे फॉरमल्डीहाइड का धुआँ पूरी तरह निकल जाए पौध लगाने के पहले प्रति वर्ग मीटर नाइट्रोजन 05 ग्राम, फास्फोरस 05 ग्राम एवं पोटाश 05 ग्राम की पोषित खुराक डाली जाती है।

क्यारियों के मध्य में सिंचाई के लिए इन लाइन लेट्रल पाइप डाली जाती है। इस पाइप में 30 से.मी. दूरी पर छेद होता है जिससे 2 लीटर पानी का निकास होता है।

*सहायक–प्राध्यापक, **शोध छात्र, कीट विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या उत्तर प्रदेश –224229

मल्चिंग

पॉलीहाउस में तैयार क्यारियों को 400 गेज (25 माइक्रोन) की काली पॉलीइथिलीन फिल्म से ढक देना चाहिए और दोनों तरफ किनारे से मिट्टी को दबा देना चाहिए।

पौध रोपण

कतारों के बीच 60 से.मी. और पौधों के बीच 30 से.मी. के अंतर पर दोहरी कतार में छेद बनाये जाते हैं। शिमला मिर्च के पौधों को पॉलीहाउस में प्लास्टिक की ट्रै में तैयार करने के बाद रोपण किया जाता है। पौधों को रोग एवं कीटों से बचाने के लिये रोपण के एक दिन पहले 0.3 मि.ली. इमिडाक्लोप्रिड प्रति लीटर पानी का मिश्रण बनाकर छिड़काव किया जाता है। रोपने से पहले 4 लीटर पानी में 4 ग्राम फफूँदी नाशक (कार्बेन्डाजिम) के मिश्रण से पौधों की जड़ों को गीला किया जाता है।

पौधों को पॉलीइथिलीन के छिद्रों के मध्य में लगाया जाता है। इसमे ध्यान देना चाहिए कि पौध कहीं भी प्लास्टिक की चादर से नहीं छुएँ। रोपण के तत्काल बाद हजारे से हल्की सिंचाई करना चाहिए। पौध स्थापित होने तक प्रतिदिन इसी तरह सिंचाई होना जरूरी है।

यदि पॉलीहाउस में आर्द्रता कम हो तो फॉगर चलाये जाते है। पॉलीहाउस को रोग मुक्त करने के बाद भी अगर पौध मरने लगें तो 4 ली. पानी में 3 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या 4 ली. पानी में 4 ग्राम कार्बेन्डाजिम से क्यारियों को गीला किया जाता है।

शिमला मिर्च के पौधे को 30 से.मी. ऊपर से काट कर उसकी दो शाखाओं को बढ़ने दिया जाता है। पौधे की इन शाखाओं को फसल के अन्त तक रखा जाता है शेष अन्य सभी शाखाओं को हटाते रहना चाहिये। दूसरी गाँठ के पास से फिर काट देते हैं जिससे चार शाखाएँ निकल आती हैं।

बढ़ते हुए पौधों को सहारा देने के लिए नाइलॉन के तार/प्लास्टिक ट्यूब से प्रत्येक शाखा को साधा जाता है।

प्रतिदिन 2 से 3 ली0 पानी प्रति वर्ग मीटर की दर से दिया जाता है। रोपण के तीसरे हफ्ते में घुलनशील उर्वरक 9:49:9 (एन.पी.के.) को 43.74 ग्राम/वर्ग मीटर में ड्रिप सिंचाई द्वारा दिया जाता है। रोपण के 60 दिन बाद 2 या 3 दिन के अन्तराल पर सूक्ष्म पोषक तत्व दिये जाते है।

पुष्प

मिर्च एक स्व–परागित फसल है परन्तु 7.6–36.8 प्रतिशत तक पर–परागण भी होता है। मिर्च मे पुष्पक्रम कक्षस्थ होता है जिसमें एकल पुष्प होते है। कभी–कभी पुष्प गुच्छे में भी आते है। पुष्प पूर्ण, द्विलिंगी तथा अधोजामी होता है। पुष्प मे सफेद रंग की पाँच पंखुड़ियाँ होती है। पुंकेसर पाँच तथा परागकोष द्विकोष्ठी होते है। जननांग द्विअण्डीय, बीज अण्डाशय अक्षीय, बिजांड अनेक तथा वर्तिका एक होती है।

फसल सुरक्षा

शिमला मिर्च में फसल सुरक्षा हेतु कीट व्याधियों से रोकथाम का समुचित उपाय किया जाना आवश्यक है। सफाई एवं नियंत्रित आवागमन से काफी हद तक कीटों पर संपूर्ण नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है।

कीट प्रबंधन

थ्रिप्स

ये कीट पत्तियों का रस चूसते हैं, जिससे पत्तियाँ सिकुड़ जाती है या एकदम छोटी रह जाती है। यह कीट विषाणु रोग को फैलाने में भी मदद करता है अतः इसकी रोकथाम हेतु नूवाक्रान 4.0–4.5 मि.ली. प्रति ली. पानी में घोलकर 45 दिनो के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिये।

माइट

यह कीट मिर्च के पौधों की पत्तियों एवं फूलों का रस चूसते हैं साथ ही विषाणु रोग को फैलाने में मदद करता है। इस कीट की रोकथाम हेतु 2.5–3/ ग्रा. प्रति ली. घुलनशील गंधक का छिड़काव दिनों के अन्तराल पर करना चाहिये।

माहू

ये कीड़े भी पौधे का रस चूसते हैं तथा विषाणु रोग फैलाते हैं। इसके लिए नुआकान या रोगार की 2.0 लीटर मात्रा 660–700 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

सूत्रकृमि

ये पौधों की जड़ो में छोटी–छोटी गाँठ या ग्रंथियाँ उत्पन्न करते हैं जिनके कारण पौधों में पोषक तत्वों की आपूर्ति बंद हो जाती है और पौधे मर जाते हैं। अतः कार्बोफ्यूरान या फीनेमीफास का 4–2 कि. ग्रा. (सक्रिय तत्व) प्रति हेक्टेयर की दर से मिट्टी में मिलायें।

व्याधियाँ

शीर्षमरण रोग (डाइबैक) एवं फल सड़न

इस रोग में पौधों का ऊपरी भाग सूखना प्रारम्भ होता है और नीचे तक सूखता जाता है। प्रारम्भिक अवस्था में यह टहनियाँ गीली होती हैं और उस पर रोएंदार कवक दिखायी देते हैं। रोगग्रस्त पौधों के फल सड़ने लगते हैं। लाल फलों पर इस रोग का प्रकोप अधिक होता है। इससे बचाव के लिए कार्बन्डाजिम 2.5 ग्राम दवा प्रति किलो ग्राम बीज की दर से उपचारित कर बोते हैं एवं क्षतिग्रस्त टहनी को सुबह के समय कुछ नीचे से काट कर इकट्ठा कर जला दें। डाइफोल्टान (ग्राम दवा प्रतिलीटर पानी) तथा कार्बेन्डाजिम 0.4 प्रतिशत (। ग्राम/लीटर पानी) घोल का छिड़काव बारी–बारी से करें।

आद्रगलन

इस रोग में तने सड़ने लगते हैं और पौधे मरने लगते हैं। अतः इसके बचाव के लिए बुवाई से पहले थीरम या कैपटॉन 6 ग्राम प्रति क्रि.ग्रा. से बीजोपचार अवश्य करना चाहिए।

एन्थ्रेक्नोज

इसका प्रभाव छोटे और पके फलों, पत्तियों तथा तनों पर भूरे धब्बे के रूप में दिखायी देता है। इसके लिए बेनलेट 0.4 प्रतिशत या थीरम 0.2 प्रतिशत का छिड़काव पन्द्रह दिन के अंतर से दो बार करें। वेवस्टीन के 0.4 प्रतिशत घोल का छिड़काव भी काफी लाभकारी पाया गया है, अतः वेवेस्टीन या बेनलेट के 2. 5 ग्राम दवा को प्रति किलो बीज की दर से उपचारित कर बुआई करें।

पत्तियों का जीवाणु धब्बा रोग

नयी पत्तियों पर हरे और पुरानी पत्तियों पर जलीय काले धब्बे पाये जाते हैं। इससे फलों पर फफोले जैसे धब्बे उत्पन्न हो जाते हैं। बचाव के लिए बीज का उपचार स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 400 पी.पी.एम. से करना चाहिये तथा कॉपर आक्सीक्लोराइड की 3 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 2–3 बार 8–40 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए।

दैहिकी विकार

जब ग्रीन हाउस में तापमान 32 डिग्री सें.ग्रे. से अधिक बढ़ जाता है तथा आर्द्रता 50 प्रतिशत से कम हो जाती है तब शिमला मिर्च के पौधो में विविध प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जैसे फूलों एवं फलों का झड़ना, फलों का सूखना, सड़ना तथा फलों की सतह का सूख कर भूरा पड़ना। इसकी रोकथाम के लिए ग्रीन हाउस का तापमान 30 डिग्री सें.ग्रे. से अधिक नहीं होना चाहिए एवं आर्द्रता 60 प्रतिशत से ऊपर होना चाहिए।

इसकी रोकथाम हेतु ग्रीन हाउस में फॉगर चलाकर तापमान 30 डिग्री सें.ग्रे. से कम एवं आर्द्रता 60 प्रतिशत बढ़ाना चाहिए इसके साथ ही ग्रीन हाउस की सारी खिड़कियों एवं उपरी खिड़कियों एवं पंखे के द्वारा अन्दर का तापमान कम करना चाहिए।

तुड़ाई

रोपाई के 60–65 दिन उपरांत शिमला मिर्च की तुड़ाई शुरू हो जाती है एवं पॉलीहाउस में इसका उत्पादन 6 महीने तक चलता है।

उत्पादन

शिमला मिर्च का उत्पादन पॉलीहाउस में समान्यतः 40–2 किग्रा. वर्ग मी. होता है जो 4–5 कि.ग्रा. प्रति पौधा होता है। प्रति हेक्टेयर शिमला मिर्च का उत्पादन 400–420 टन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होता है।

टमाटर के समन्वित कीट एवं उनकी रोकथाम के उपाय

अरविन्द कुमार**, डॉ. पंकज कुमार*, विष्णु ओमर**

टमाटर एक सब्जी वाली फसल है। इसको वर्ष के तीनो मौसमो में उगाया जाता है परंतु इसकी खेती ज्यादातर ठंडे मौसम में की जाती है। इसके सफल उत्पादन हेतु इसका तापमान 21 से 23 डिग्री अनुकूल माना गया है। यह एक ऐसी सब्जी है जिसके अंदर सूखा सहने की अधिक क्षमता होती है। परन्तु अगर हम इसकी फसल में ज्यादा सूखे के बाद तुरंत ही सिंचाई कर दें तो एक दम से पानी मिलने की वजह से इसका फल धीरे–धीरे फटने लग जाता है, और इसके फूल के तने गलने लगते हैं। टमाटर में भरपूर मात्रा में कैल्शियम, फास्फोरस व विटामिन सी पाये जाते हैं। एसिडिटी की शिकायत होने पर टमाटरों की खुराक बढ़ाने से यह शिकायत दूर हो जाती है। लाल–लाल टमाटर देखने में सुन्दर और खाने में स्वादिष्ट होने के साथ पौष्टिक होते हैं। इसके खट्टे स्वाद का कारण यह है कि इसमें साइट्रिक एसिड और मैलिक एसिड पाया जाता है जिसके कारण यह प्रत्यम्ल (एंटासिड) के रूप में काम करता है।

टमाटर में अधिक मात्रा में पानी और साथ ही साथ विटमिन सी भी पाया जाता है। टमाटर में लाइकोपीन नामक वर्णक पाया जाता है, जिसके कारण टमाटर पकने पर लाल हो जाता है। टमाटर को गरीबों का सेब भी कहा जाता है। टमाटर में रोपाई से लेकर कटाई तक बड़ी संख्या में कीटों द्वारा नुकसान होता है जैसे फल छेदक, माहूँ और सफ़ेद मक्खी आदि।

प्रमुख कीट एवं नियंत्रण

फल छेदक

पहचान एवं हानि–वयस्क मध्यम आकार व पंख के केन्द्र पर धब्बे होते हैं। पिछले पंख पीले व काले भूरे रंग के होते है। नवजात शिशु प्रारंभ में ताजा ऊतकों को तथा बाद में फल में छेद कर देते हैं, जिससे उपभोक्ता द्वारा बाजार में पसंद नहीं किये जाते हैं।

फल छेदक

नियंत्रण के उपाय

- टमाटर के साथ अमेरिकन गेंदा 1:16 के अनुपात में पंक्तियों में एक साथ रोपित करें।
- ग्रसित फलों को इकट्ठा कर के नष्ट कर देना चाइये।
- फल छेदक के लिए ,न0पी0वी0 250 एल. ई. प्रति हेक्टेयर 10 से 15 दिनों के अन्तराल पर छिडकाव करें।
- इन्डोक्साकार्ब 14.5 प्रतिशत ,स0सी0 0–8 मिली0 प्रति लीटर पानी अथवा फ्लूबेन्डामाइड 20 प्रतिशत डब्लू0जी0 0–5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर 10 से 15 दीनों के अन्तराल पर छिडकाव करें।

सफेद मक्खी

पहचान एवं हानि– वयस्क लगभग 1 से 2 मिमि लम्बे, नर मादा से थोड़ा छोटे होते है। शरीर और पंखो का रंग पीला व सफ़ेद होता है। प्यूपा 0.7 मिमि चपटे व अंडाकार होते है। सफ़ेद मक्खी पोधे की पत्तियों का रस चूस लेती हैं जिसके कारण पौधा कमजोर पड़ जाता है। अगर पौधों के आस–पास पानी भरा हुआ है तो नुकसान और अधिक बढ़ जाता हैं। सफेद मक्खी बायोटाइप 'बी' टमाटर पत्ती कर्ल वायरस के संक्रमण और संचारित होने से फसल के पूर्णरूप से नुकसान

*सहायक–प्राध्यापक, **शोध छात्र, कीट विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या उत्तर प्रदेश –224229

होने का खतरा हो जाता हैं।

सफ़ेद मक्खी

नियन्त्रण के उपाय

• वयस्क मक्खी को आकर्षित करने के लिए पीला स्टीकी ट्रैप लगाना चाहिए।

• ग्रसित पौधों को उखाड़ कर जमीन में दवा देना चाहिये जिससे पत्तियों का पर्ण कुंचन रोग रोका जा सके।

• प्रतिरोधक प्रजातियाँ लगाना चाइये।

• खेत की समय–समय पर देखरेख करना चाइये।

• डाइममिथोयट 30 प्रतिशत ई. सी. 1 मिली प्रति लीटर पानी में घोलकर 10 से 15 दिन के अंतराल पर छिडकाव करें।

माहूँ

पहचान एवं हानि–यह कीट पंखहीन व हरे रंग का होता है। माहूँ यह पोधे की पत्तियों का रस चूस लेते है जिससे पोधा कमजोर पड़ जाता है। यह पोधे की वानस्पतिक व फसल पकने तक दिखाई देते हैं।

माहूँ

नियंत्रण के उपाय

- ग्रसित पत्तियों को इकट्ठा कर के जमीन में दबा देना चाहिये।
- संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करें।
- प्रतिरोधक प्रजातियों का चयन करें।
- एमिडाक्लोप्रिड 200 एस. एल. 5 मिली प्रति लीटर या डाइममिथोयट 30 प्रतिशत ई. सी. 1 मिली प्रति लीटर की दर से 10 से 15 दिन के अंतराल पर छिडकाव करें।

तम्बाकू की इल्ली (टोबैको कैटरपिलर)

पहचान एवं हानि–इस कीट की इल्लियाँ पौधों व पत्तों व नई कोपलों को नुकसान पहुंचाती हैं। इनके प्रकोप से पौधे पत्ती रहित हो जाते हैं। यह फलों को भी खाती हैं।

प्रबंधन

1. इल्लियों से प्रकोपित पौधों को निकालकर भूमि में दबा देना चाइये।
2. कीट की निगरानी के लिए 5 फेरोमोन ट्रैप प्रति हेक्टेयर लगाएं।
3. बी.टी. 1 ग्राम/लीटर या नीम के बीज का रस 5 प्रतिशत3 मिली/लीटर छिड़काव करें।
4 स्पाईनोसेड45 एस.सी. 1 मिली/4 लीटर या डेल्टामेंथ्रिन 2.5 ई.सी. 1.मिली/पानी घोलकर छिड़काव करें।

पत्ती सुरंगक कीट (लीफ माइनर)

पहचान एवं हानि

लीफ माइनर कीट यह बहुत ही छोटे होते हैं। पत्तियों के अंदर घुस कर सुरंग बनाते हैं। इससे पत्तियों पर सफेद धारी जैसी लकीरें दिखाई देती हैं ।

इस कीट के शिशु पत्तों के हरे पदार्थ को खाकर इनमें टेढ़ी–मेंढ़ी सफ़ेद सुरंगे बना देते हैं। इससे पौधों का प्रकाश संश्लेषन रुक जाता जाता है। अधिक प्रकोप से पत्तियां सूख जाती हैं।

लीफ माइनर से प्रकोपित पत्तियाँ

प्रबंधन

- प्रतिरोधक प्रजातियाँ लगाना चाइये।
- खेत की समय–समय देख रेख करना चाहिये।
- ग्रसित पत्तियों को निकाल कर नष्ट कर दें।
- डाइमेंथोएट 2 मि.लि./लीटर या इमीडाक्लो 1 प्रिड मी.लि./3 लीटर पानी में घोलकर छिडकाव करें।

संरक्षित खेती में सिंचाई और फर्टीगेशन

डॉ संदीप कुमार पाण्डेय*, डॉ प्रमोद कुमार मिश्र*, डॉ डी. के. सिंह* एवं पंकज शर्मा**

भारत एक कृषि प्रधान देश है। देश की बढती आबादी की समस्या के साथ सीमित भूमि के लिए संसाधनों के साथ साथ नवीन कृषि को अपनाने की जरूरत है, तथा संसाधनों के कुशल उपयोग से कृषि उत्पादकता एवं अच्छी गुणवत्ता बढ़ाने के लिए संरक्षित खेती अति अवश्यक है। ग्रीनहाउस तकनीक एक ऐसी तकनीक है, जिससे खुले खेत की खेती की तुलना में भूमि के एक ही टुकड़े से अच्छी गुणवत्ता वाले उत्पाद का उत्पादन किया जा सकता है। ग्रीनहाउस एक फ्रेम युक्त संरचना होती है, जो एक पारदर्शी सामग्री से ढकी होती है, जैसे कि पॉली फिल्म जिसमें फसलों को नियंत्रित परिस्थितियों में उगाया जा सकता है । इसके निम्नलिखित लाभ हैं :

- नियंत्रित वातावरण के कारण, फसल को ठंड, हवा, तूफान, बारिश और कुहरे से बचाया जाता है और फसलों को पूरे साल उगाया जा सकता है ।
- नियंत्रित परिस्थितियों के कारण, बीजों में बेहतर अंकुरण होता है और अनुकूलित वातावरण होने के कारण पौधों का वृद्धि एवं विकास तेजी से होता है ।
- कीटों और रोगों की समस्याओं को कम किया जा सकता है ।
- फसल उत्पादन अधिक एवं उत्पादन की गुणवत्ता में काफी सुधार किया जा सकता है ।
- बे मौसमी सब्जियों का उत्पादन आसानी से किया जा सकता है ।

संरक्षित खेती के अंतर्गत सभी प्रकार की फसलों को ग्रीनहाउस के अंदर आसानी से उगाया जा सकता है । फसल की बाजारों में बढती माँग और फसल मूल्य को ध्यान में रखकर ग्रीनहाउस के अंदर निम्नलिखित फसलों की सिफारिश की जाती है :

फूलों की खेती

इसके अंतर्गत गुलाब, जरबेरा, गुलदाउदी, एंथुरियम , ग्लेडियोलस और आर्किड इत्यदि फसलें आसानी से उगायी जा सकती हैं ।

सब्जियों की खेती

इसके अंतर्गत मौसमी और ऑफ सीजन सब्जियाँ जैसे शिमला मिर्च, रंगीन शिमला मिर्च, टमाटर, ककड़ी, धनिया और लेटुस आदि शामिल हैं ।

ग्रीनहाउस के अंदर सिंचाई प्रणाली एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सामान्यतयः ग्रीनहाउस के अन्दर ड्रिप सिंचाई प्रणाली का उपयोग फसलों की सिंचाई के लिए किया जाता है। ड्रिप सिंचाई एक धीमी जल वितरण प्रणाली है, जिसमें पानी को पौधे के जड़ों के पास मिटटी में ड्रिपर के द्वारा बूँद बूँद करके दिया जाता है। इस सिंचाई प्रणाली की दक्षता लगभग 90 प्रतिशत तक होती है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली के लाभ निम्नलिखित हैं:

- खाद, पानी, उर्वरकों और मजदूरी की लागत में बचत होती है।
- पौधे के उचित विकास के लिए जड़ क्षेत्र में इष्टतम मिट्टी की नमी का एक निरंतर स्तर बनाये रखता है।
- पानी की एक सटीक मात्रा रखता है तथा साथ ही साथ ज्यादा पानी की समस्या से बचाता है।
- पत्तियों पर फफूदी की समस्या को रोकता है।
- हवा में पानी की बूँदों के वाष्पीकरण को कम करता है।

ड्रिप सिंचाई प्रणाली के घटक

ड्रिप सिंचाई प्रणाली में पंप स्टेशन, बाय पास असेंबली,

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज अयोध्या उत्तर प्रदेश*, पंजाब कृषि विश्वविद्यालय लुधियाना, पंजाब**

वाल्व असेंबली , फिल्टरेशन यूनिट, फर्टिगेशन यूनिट, मेनलाइन, सब–मेनलाइन, लेटरल और ड्रिपर्स आदि शामिल हैं ।

पंप स्टेशन

ड्रिप सिंचाई प्रणाली में सिंचाई के पानी को टैंक, तालाब, झरना, कुवाँ, नदी, और नहर से उठाने/ लिफ्ट करने तथा समुचित प्रेशर के माध्यम से ड्रिप लेटरल तक पहुँचाने का कार्य पंप की सहायता से किया जाता है ।

नॉन–रिटर्न वाल्व

पंप बंद होने के बाद पानी के बैक फ्लो से पंप के नुकसान को रोकने के लिए इसका उपयोग किया जाता है ।

एयर रिलीज वाल्व

इसका उपयोग सिस्टम के शुरू में उलझे हुए वायु को छोड़ने और शट–ऑफ के दौरान वैक्यूम को तोड़ने के लिए किया जाता है।

फर्टिगेशन यूनिट

इस यूनिट की सहायता से पानी के साथ घुलनशील उर्वरको को सिंचाई के पानी के साथ प्रयोग किया जाता है। फर्टीगेशन के लिए निम्न उपकरण हो सकते हैं–

फर्टिगेशन टैंक

इस विधि के लिए एक टैंक का उपयोग किया जाता है, जिसमें सूखे या तरल उर्वरक रखे जाते हैं। टैंक मुख्य सिंचाई लाइन से एक बाई पास के माध्यम से जुड़ा हुआ होता है जो कि सिंचाई का कुछ पानी टैंक से बहता है और उर्वरको के घोल को पतला करता है।

वेंचुरी

इसका प्रयोग मुख्य जल प्रवाह पाइप में उपयोग किया जाता है यह बर्नौली सिद्धान्त पर कार्य करता है। इसमें उर्वरकों के घोल को चूसने के लिए वैक्यूम पैदा किया जाता जो कंटेनर से घोल को चूषण प्रक्रिया के द्वारा सिंचाई के पानी के साथ प्रवाहित करता है । इंजेक्शन की दर को वाल्व के माध्यम से विनियमित किया जा सकता है।

इंजेक्टर पंप

इस पंप की सहायता से उर्वरकों को सिंचाई लाइन में इंजेक्ट करने के लिए उपयोग किया जाता है । पंप के प्रकार का उपयोग बिजली के स्रोत पर निर्भर है ।

फिल्टर

ब्लॉकिंग या क्लॉगिंग के खतरे को सिंचाई प्रणाली के कुशल और परेशानी मुक्त संचालन के लिए फिल्टर के उपयोग की आवश्यकता होती है । सिंचाई प्रणाली में उपयोग किए जाने वाले विभिन्न प्रकार के फिल्टर नीचे वर्णित हैं–

प्राथमिक फिल्टर

रेत फिल्टर या मीडिया फ़िल्टर और हाइड्रोसायक्लोन फिल्टर

माध्यमिक फिल्टर

स्क्रीन फिल्टर, डिस्क फिल्टर

रेत फिल्टर

रेत फिल्टर बजरी या मोटे क्वाट्र्ज रेत से मिलकर बनता है, यह एक बेलनाकार टैंक में कैल्शियम कार्बोनेट से मुक्त रेत का प्रयोग किया जाता है। जब सिंचाई के पानी का स्रोत खुला जलाशय, नहरें या तालाब होते हैं जिसमें शैवाल विकसित हो सकते हैं इस प्रकार के फिल्टर उपयुक्त होते हैं।

हाइड्रो साइक्लोन फिल्टर

इस प्रकार के फिल्टर का उपयोग पानी में बालू की समस्या को ख़त्म करने के लिए किया जाता है यह अच्छी तरह से नदी के पानी से रेत, बजरी और अन्य उच्च घनत्व सामग्री को छानने में प्रभावी होते हैं ।

स्क्रीन फिल्टर

स्क्रीन फिल्टर हमेशा क्लॉगिग के खिलाफ एक अतिरिक्त सुरक्षा के रूप में अंतिम निस्पंदन के लिए स्थापित किये जाते हैं।

डिस्कफिल्टर

डिस्क फिल्टर में नालीदार, अंगूठी के आकार के डिस्क के ढेर होते हैं जो मलबे को पकड़ते हैं । निस्पंदन मोड के दौरान, डिस्क को एक साथ दबाया जाता है।

मेनलाइन

मेनलाइन खेत के भीतर पानी पहुंचाती है और सबमेन पाइप को वितरित करती है। मेनलाइन कठोर पी. वी. सी. या उच्च घनत्व पॉलीथीन (एच. डी. पी. ई.) से बनी होती है। 90, 75, और 65 मिमी व्यास और इससे अधिक की तथा 4 से 6 किलोग्राम/सेमी 2 दबाव वाली रेटिंग के साथ की पाइप लाइन मुख्य पाइप के लिए उपयोग की जाती है।

सबमेन लाइन

सबमेन लाइन समान रूप से पानी को ड्रिप लाइन या लेटरल में वितरित करता है। उप मुख्य पाइपों के लिए, कठोर पी वी सी, एच. डी. पी. ई. या एल. डी. पी. ई. (कम घनत्व पॉलीथीन) व्यास का 32 मिमी से 75 मिमी तक 2.5 मिमी/सेमी 2 की दबाव रेटिंग वाले होते हैं, जिनका उपयोग किया जाता है।

लेटरल

ड्रिपर्स या एमिटर के माध्यम से लेटरल लंबाई के साथ समान रूप से सिंचाई के पानी को वितरित करते हैं। ये सामान्य रूप से एल. डी. पी. ई. और एल. एल. डी. पी. ई. से निर्मित होते हैं। आमतौर पर ये 10 से 12 और 16 मिमी आंतरिक व्यास वाले पाइप होते हैं, जिनका उपयोग लेटरल के रूप में किया जाता है ।

एमिटर/ड्रिपर

आमतौर पर उपयोग किए जाने वाले ड्रिपर्स ऑन लाइन दबाव क्षति पूर्ति या ऑनलाइन गैर–दबाव क्षति पूर्ति, इन–लाइन ड्रिपर 1 से 4 मिमी व्यास के माइक्रो टयूबिंग के बने होते हैं। ये पॉली प्रोपलीन या एल एल डी पी ई से निर्मित होते हैं। ये अलग अलग डिस्चार्ज रेट के होते है जैसे की 0.5,2,4,6,8,10,12,14 और 16 लीटर प्रति घंटा की क्षमता के होते हैं।

ऑन लाइन प्रेशर कम्पेंसेटिव ड्रिपर्स

इस प्रकार के ड्रिपर में पानी का डिस्चार्ज अलग अलग ऑपरेटिंग प्रेशर के साथ समान रहता है इस प्रकार की ड्रिपर लंबी लाइनों पर तथा असमान ढलान होने पर समान रूप से पानी की आपूर्ति करती है।

ऑन लाइन नॉन– प्रेशर कम्पेंसेटिव ड्रिपर्स

इस तरह के ड्रिपर्स में डिस्चार्ज ऑपरेटिंग प्रेशर के साथ अलग–अलग होते हैं। इस प्रकार के ड्रिपर सस्ती कीमत में बाजारों में उपलब्ध हैं।

इन–लाइन ड्रिपर्स या इन लाइन ट्यूब

इस प्रकार के ड्रिपर या ड्रिप ट्यूब लेटरल पाइप में इन बिल्ट होते हैं तथा 15, 20, 30, 40, 50, 60, 75 और 90 सेमी के विभिन्न स्पेसिंग में उपलब्ध होते हैं ।

अन्य सामान ले–आउट/स्टार्टर, रबर ग्रोमेट, एंड प्लग, जोड़ों, टीज़, मैनिफोल्ड्स ,फ्लश वाल्व आदि हैं।

फसलों की जल आवश्यकताएं

फसलों की दैनिक पानी की आवश्यकताओं की गणना निम्न के आधार पर की जाती है

पानी की आवश्यकता/दिन/संयंत्र (लीटर)

पैन वाष्पीकरण (मिमी) गुणा 0.8 गुणा वर्ग मीटर में फसल क्षेत्र ग्रीन हाउस में पैन वाष्पीकरण को लगे स्वचालित सयंत्र की सहायता से या आकार के आधार पर पैन वाष्पीकरण 0.6मिमी और ग्रीनहाउस के केंद्र में लकड़ी के स्टैंड पर रखी 0.75 की गहराई के साथ मापा जा सकता है ।

मिस्टिंगऔर फॉगिंग प्रणाली

ग्रीनहाउस में आर्द्रता या तापमान नियंत्रण बनाए रखने के लिए फॉगर्स और मिस्टर का उपयोग किया जाता है। ग्रीन हाउस को ठंडा करने के लिए फोगर्स/मिस्टर्स को 10 सेकंड के अंतराल पर 10 सेकंड से अधिक के लिए संचालित किया जाना चाहिए, जब तक कि तापमान में पर्याप्त गिरावट न हो । पॉलीहाउस के अंदर आर्द्रता बढ़ाने के लिए फॉगिंग की अवधि 1

सेकंड होनी चाहिए और आर्द्रता के स्तर के आधार पर दो फॉगिंग/धुंध के बीच का अंतराल 30/60/120 सेकंड हो सकता है । आर्द्रता के लिए फॉगिंग करते समय पर्दे नीचे की ओर उतारे जाने चाहिए और ठंडक के उद्देश्य से फॉगिंग के लिए पर्दे उठाए जाने चाहिए।

ग्रीनहाउस के अंदर फर्टीगेशन प्रणाली

ड्रिप सिंचाई प्रणाली के लिए फर्टीगेशन एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है । फर्टीगेशन की प्रक्रिया में उर्वरकों को घोल रूप में सिंचाई के पानी के साथ पौधों की जड़ों में देना ही फर्टीगेशन कहलाता है। फर्टीगेशन प्रणाली उर्वरक आवेदन पर सटीक नियंत्रण प्रदान करता है तथा संयंत्र पोषक तत्व की दर से समायोजित किया जा सकता है ।

फर्टिगेशन के लाभ

- फर्टिगेशन पोषक तत्वों को समान रूप से जड़ों तक पहुँचाता है।
- यह उर्वरक के आवेदन में दक्षता को बढ़ाता है।
- फर्टिगेशन लीचिंग के कारण होने वाले भूजल प्रदूषण को कम करता है।
- ऊर्जा और श्रम की बचत करता है ।
- फर्टिगेशन किसी भी समय पर किया जा सकता है ।

पौधों की पोषक आवश्यकताएं

पौधों को सामान्य वृद्धि और विकास के लिए 21 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है, जिसमे कि नौ प्रमुख पोषक तत्व या मूल पोषक तत्व होते हैं, और ग्यारह सूक्ष्म पोषक तत्व होते हैं। एक बेहतर उर्वरक प्रबंधन का उद्देश्य पर्याप्त मात्रा में इन आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति करना है। सभी पौधों के विकास के लिए आवश्यक तत्व निम्न हैं

- **मूल तत्व**– कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन ।
- **प्रमुख पोषक तत्व**– नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम, और सल्फर।
- **सूक्ष्म पोषक तत्व**– आयरन, बोरॉन, मैंगनीज, कॉपर, जिंक, मोलिब्डेनम, क्लोरीन, निकिल, कोबाल्ट सोडियम, सिलिकॉन और बेनेडियम हैं। जिसमे कार्बन हाइड्रोजन और ऑक्सीजन बड़े पैमाने पर हवा और पानी से आपूर्ति किये जाते हैं। शेष तत्वों को आमतौर पर खनिज तत्वों के रूप में संदर्भित किया जाता है, क्यूँकि इनकी आपूर्ति कई श्रोतों से की जाती है ।

फर्टीगेशन के लिए उर्वरकों की उपयोगिता

फर्टीगेशन के लिए बड़ी मात्रा में ठोस व तरल दोनों प्रकार के रसायनिक उर्वरक उपयुक्त होते है। तरल उर्वरकों की तुलना में ठोस उर्वरक आमतौर पर कम खर्चीले होते हैं। फर्टीगेशन के लिए उर्वरकों की उपयुक्तता के तीन मुख्य कारक हैं –

1. घुलनशील ठोस और तरल उर्वरक दोनों उनकी उपलब्धता, सुविधा और लाभप्रदता के आधार पर उर्वरता के लिए उपयुक्त होते हैं।
2. पानी में उर्वरकों की घुलनशीलता बहुत ही महत्वपूर्ण कारक है।
3. पानी और उर्वरकों के बीच परस्पर कोई क्रिया नहीं होनी चाहिए।

आमतौर पर ड्रिप सिंचाई के माध्यम से उर्वरकों के आवेदन के लिए उर्वरक टैंक प्रणाली, वेंचुरी इंजेक्टर या इंजेक्टर पंप का उपयोग किया जाता है । कुछ उर्वरक एक दूसरे के साथ तुरंत संपर्क करते हैं इसलिए अलग–अलग टैंक का उपयोग किया जाता है । टैंक ए और टैंक बी से प्रतिदिन वैकल्पिक रूप से फर्टिगेशन किया जाता है । टैंक सी का उपयोग पी एच को समायोजित करने के लिए किया जाता है जो लगभग 5.8–6.5 होना चाहिए और फर्टीगेशन के लिए प्रयोग किया जाने वाले तरल घोल का ई. सी. 1.2 – 1. 5 एम. एस./सेमी होना चाहिए । सूक्ष्म पोषक तत्व स्प्रेयर की मदद से हर 15 दिनों के बाद 1 मिली/ली के अनुसार स्प्रे किया जा सकता है ।

सर्दी में पाले से फसलों का कैसे करे बचाव

अभिषेक सिंह*, डॉ हेमंत कुमार सिंह** एवं राहुल सिंह राघुवंशी*

सर्दी का मौसम शुरू होते ही सबके सामने ठंड एक समस्या बनकर खड़ी हो जाती है। जब सर्दी अपनी चरम सीमा पर होती है, उस वक्त किसानों को भी अपनी फसलों को बचाने की चिंता सताने लगती है। कड़क सर्दी के कारण फसलों पर पाला पड़ने की आंशका बढ़ जाती है, जिससे रबी की फसलों को काफी नुकसान पहुंचता है। किसान चाहते हैं कि वे पाले से किसी भी तरह अपनी आलू, अरहर, चना, सरसों, तोरिया, बागवानी फसलें, गेहूँ, जौ आदि को बचाएं। प्रस्तुत लेख में पाले से रबी फसलों को बचाने की तकनीक पर विस्तार से चर्चा की जा रही है। उत्पादन वृद्धि के लिए जरूरी है सिंचाई सुविधाओं का विस्तार। बेहतर फसल प्रबंध में रबी पफसलों के लिए पाले से होने वाले नुकसान को रोकने या कम करने के प्रमुख उपाय निम्न हैंः

पौधों को कैसे क्षति पहुंचाता है पाला

पाले से प्रभावित पौधों की कोशिकाओं में उपस्थित पानी सर्वप्रथम अंतरकोशिकीय स्थान पर इकट्ठा हो जाता है। इस तरह कोशिकाओं में निर्जलीकरण की अवस्था बन जाती है। दूसरी ओर अंतरकोशिकीय स्थान में एकत्र जल जमकर ठोस रूप में परिवर्तित हो जाता है, जिससे इसके आयतन बढ़ने से आसपास की कोशिकाओं पर दबाव पड़ता है। यह दबाव अधिक होने पर कोशिकाएं नष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार कोमल टहनियां पाले से नष्ट हो जाती हैं।

पौधे में पाला पड़ने के लक्षण एवं पाले के प्रकार

आरंभिक पाले के लक्षण पुरानी पत्तियों, तनों और फलों पर होते हैं। पत्तियों पर भूरे से लेकर कत्थई रंग के धब्बे दिखाई देते हैं और वे एक स्पष्ट केंद्र के चारों ओर धीरे–धीरे बढ़ते हैं। इसे विशिष्ट "बुल्स आई" (बैल की आंख) बनावट कहते हैं। ये घाव एक चमकीले पीले आभामंडल से घिरे होते हैं। जैसे–जैसे रोग बढ़ता है, पूरी पत्तियाँ हरितहीन हो जाती हैं और झड़ जाती हैं, जिसके कारण अत्यधिक पर्णपात होता है। जब पत्तियाँ मर जाती हैं और झड़ जाती हैं, तो फल धूप से झुलसने के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं। तनों और फलों पर स्पष्ट केंद्र वाले उसी प्रकार के धब्बे दिखाई देने लगते हैं। फलों में सड़न होती है और कभी –कभी वे गिर जाते हैं।

प्रायः पाला पड़ने की आशंका एक जनवरी से 10 जनवरी तक अधिक रहती है। जब आसमान साफ हो, हवा न चल रही हो और तापमान कम हो जाये तब पाला पड़ने की आशंका बढ़ जाती है। दिन के समय सूर्य की गर्मी से पृथ्वी गर्म हो जाती है तथा पृथ्वी से यह गर्मी विकिरण द्वारा वातावरण में स्थानातंरित हो जाती है, इसलिए रात्रि में जमीन का तापमान गिर जाता है, क्योंकि पृथ्वी को गर्मी तो नहीं मिलती और इसमें मौजूद गर्मी विकिरण द्वारा नष्ट हो जाती है। तापमान कई बार 0 डिग्री सेल्सियस या इससे भी कम हो जाता है। ऐसी अवस्था में ओस की बूंदें जम जाती हैं। इस अवस्था को हम पाला कहते हैं। पाला दो प्रकार का होता हैः

काला पाला

यह उस अवस्था को कहते हैं जब जमीन के पास हवा का तापमान बिना पानी के जमे शून्य डिग्री सेल्सियस से कम हो जाता है। वायुमंडल में नमी इतनी कम हो जाती है कि ओस का बनना रुक जाता है, जो पानी को जमने से रोकता है।

सफेद पाला

इसमें वायुमंडल में तापमान शून्य डिग्री सेल्सियस से कम हो जाता है। इसके साथ ही वायुमंडल में नमी ज्यादा होने की वजह से ओस बर्फ के रूप में बदल जाती है। पाले की यह अवस्था सबसे ज्यादा हानि पहुंचाती है। यदि पाला अधिक देर तक रहे, तो पौधे मर भी सकते हैं।

पाले से पौधों का बचाव

जब वायुमंडल का तापमान 4 डिग्री सेल्सियस से कम तथा शून्य डिग्री सेल्सियस तक पहुंच जाता है, तो पाला पड़ता है। इसलिए पाले से बचने के लिए किसी

*शोधछात्र एवं **सह प्राध्यापक (पादप रोग विभाग), आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229

भी तरह से वायुमंडल के तापमान को शून्य डिग्री सेल्सियस से ऊपर बनाये रखना जरूरी हो जाता है। ऐसा करने के लिए कुछ उपाय सुझाये गये हैं, जिन्हें अपनाकर हमारे किसान भाई ज्यादा फायदा उठा सकेंगे।

गंधक के तेजाब का छिड़काव करके

बारानी फसल में जब पाला पड़ने की आशंका हो तो पाले की आशंका वाले दिन फसल पर व्यावसायिक गधंक के तेजाब का 0.1 प्रतिशत का छिड़काव करें। इस प्रकार इसके छिड़काव से फसल के आसपास के वातावरण में तापमान बढ़ जाता है और तापमान जमाव बिंदु तक नहीं गिर पाता है, इससे पाले से होने वाले नुकसान से फसल को बचाया जा सकता है।

पौधों को ढककर

पाले से सबसे अधिक नुकसान नर्सरी में होता है। नर्सरी में पौधों को रात में प्लास्टिक की चादर से ढकने की सलाह दी जाती है। ऐसा करने से प्लास्टिक के अंदर का तापमान 2–3 डिग्री सेल्सियस बढ़ जाता है, इससे सतह का तापमान जमाव बिंदु तक नहीं पहुंच पाता और पौधे पाले से बच जाते हैं, लेकिन यह महंगी तकनीक है। गांव में पुआल का इस्तेमाल पौधों को ढकने के लिए किया जा सकता है। पौधों को ढकते समय इस बात का ध्यान जरूर रखें कि पौधों का दक्षिण–पूर्वी भाग खुला रहे, ताकि पौधों को सुबह व दोपहर को धूप मिलती रहे। पुआल का प्रयोग दिसंबर से फरवरी तक करें। मार्च का महीना आते ही इसे हटा दें। नर्सरी पर छप्पर डालकर भी पौधों को खेत में रोपित करने पर पौधों के थावलों के चारों ओर कड़बी या मूंज की टाटी बांधकर भी पौधों को पाले से बचाया जा सकता है।

वायुरोधक द्वारा

पाले से बचाव के लिए खेत के चारों ओर मेड़ पर पेड़–झाड़ियों की बाड़ लगा दी जाती है। इससे शीतलहर द्वारा होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है। अगर खेत के चारों ओर मेड़ पर पेड़ों की कतार लगाना संभव न हो तो कम से कम उत्तर–पश्चिम दिशा में जरूर पेड़ की कतार लगानी चाहिये, जो अधिकांश इसी दिशा में आने वाली शीतलहर को रोकने का काम करेगी। पेड़ों की कतार की ऊंचाई जितनी अधिक होगी शीतलहर से सुरक्षा उसी के अनुपात में बढ़ती जाती है और यह सुरक्षा चार गुना दूरी तक होती है जिधर से शीतलहर आ रही है। पेड़ की ऊंचाई के 25–30 गुना दूरी तक जिधर शीतलहर की हवा जा रही है, फसल सुरक्षित रहती है।

प्लास्टिक क्लोच के प्रयोग द्वारा

पपीता व आम के छोटे पेड़ को प्लास्टिक से बनी क्लोच से बचाया जा सकता है। इस तरह का प्रयोग हमारे देश में प्रचलित नहीं है। परन्तु हम खुद ही प्लास्टिक की क्लोच बनाकर इसका प्रयोग पौधों को पाले से बचाने के लिए कर सकते हैं। क्लोच से पौधों को ढकने पर अंदर का तापमान तो बढ़ता ही है साथ में पौधे की बढ़वार में भी मदद करता है।

खेतों की सिंचाई करके पाला से बचाव

जब भी पाला पड़ने की आशंका हो या मौसम विभाग द्वारा पाले की चेतावनी दी गई हो तो फसल में हल्की सिंचाई कर देनी चाहिये। इससे तापमान 0 डिग्री सेल्सियस से नीचे नहीं गिरेगा और फसलों को पाले से होने वाले नुकसान से बचाया जा सकता है। जहां पर सिंचाई फव्वारा विधि द्वारा की जाती है वहां यह ध्यान रखने की बात है कि सुबह 4 बजे तक अगर फव्वारे चलाकर बंद कर देते हैं तो सूर्योदय से पहले फसल पर बूंदों के रूप में उपस्थित पानी जम जाता है और फायदे की अपेक्षा नुकसान अधिक हो जाता है। अतः स्प्रिंक्लर को जल्दी प्रातःकाल से सूर्योदय तक लगातार चलाकर पाले से होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है।

इस प्रकार हम फसल,नर्सरी तथा छोटे फल वृक्षों को पाले से होने वाले नुकसान से बहुत ही आसान एवं कम खर्चीले तरीकों द्वारा बचा सकते हैं। विदेशों में महंगे पौधों को बचाने के लिए हीटर का प्रयोग भी किया जाता है, लेकिन हमारे देश में अभी यह संभव नहीं है। किसान भाई फसल की बढ़वार व पैदावार बढ़ाने के लिए ऊपर बताये गये तरीकों को अपनाते हैं तो निश्चित रूप से पाले के कारण रबी फसलों में होने वाले नुकसान को काफी हद तक बचाने में सफलता मिल सकती है।

कुपोषण दूर करने हेतु प्रभावशाली जीवामृत का करें पोषण वाटिका में भरपूर उपयोग

डॉ0 श्रीमती रेनू सिंह*, डॉ0 एस.के. सिंह**, डॉ0 संजय सिंह***

भारतीय खेती में अंधाधुंध रसायन उर्वरकों के प्रयोग ने हमारी भूमि की संरचना को ही बदल दिया है। फसलों की पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव तो पड़ा है साथ ही स्वास्थ्य भी खराब हो रहा है। किसान भाई व बहनें कम लागत में स्वयं जैविक खाद तैयार कर सकते हैं। पोषण वाटिका में उनके प्रयोग से स्वास्थ्य फल व सब्जियां ले सकते हैं। जैविक खादों में एक से एक जीवामृत अत्यधिक प्रभावशली जैविक खाद है। जो सब्जियों फलों फूलों खाद्यान फसलों की वृद्धि व विकास में सहायक है। यह पौधों की विभिन्न रोगाणुओं से सुरक्षा करता है और पौधों की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है। जिससे पौधे स्वस्थ्य बने रहते हैं तथा फसलों से बहुत ही अच्छी पैदावार मिलती है जीवामृत को दो रूपों में बनाया जा सकता है।

1. तरल जीवामृत
2. धन जीवामृत

आईये सीखे तरल जीवामृत बनाना

सामग्री (एक एकड़ हेतु)

- देशी गाय का गोबर – 10 किग्रा
- गोमूत्र – 10 ली
- गुड/गन्ने का रस – 1 किग्रा (पुराना/ताजा 4 लीटर)
- किसी भी प्रकार की दाल (मूंग/उर्द/चना/अरहर) आदि का आटा–1 किग्रा
- बरगद पीपल के पेड़ के नीचे की मिट्टी (इसे सजीव मिट्टी भी कहते हैं। या फिर ऐसे खेत की मिट्टी जिसमें कीटनाशक दवायें न डाली गई हों)–1किग्रा
- पानी–200 लीटर
- ड्रम (बड़ा प्लास्टिक)
- सूती कपड़ा (ढकने के लिए)–1 मीटर

विधि

- एक बड़ा प्लास्टिक का ड्रम लें उसमें 200 लीटर पानी डालें।
- जल में गोबर, गोमूत्र, गुड़/गन्ने का रस, दाल का आटा व मिट्टी डालें सभी सामग्री बारी–बारी से डालें व एक लकड़ी की सहायता से मिश्रण को पानी में अच्छी तरह मिलाएं ताकि मिश्रण पूरी तरह से मिल जाए।
- अब ड्रम का मुंह कपड़े से ढक कर ड्रम छांव में रख दें, इस मिश्रण पर सीधी धूप नहीं पड़नी चाहिए।
- अगले दिन इस मिश्रण को फिर से लकड़ी या डंडे की सहायता से हिलाएं। 6 से 7 दिन तक इस कार्य को करें। लगभग 6 से 7 दिन में तरल जीवामृत उपयोग के लिए तैयार हो जाएगा, यह 200 लीटर जीवामृत एक एकड़ भूमि के लिए पर्याप्त है।

तरल जीवामृत की प्रयोग विधि

किसान भाई जमीन की जुताई के समय तरल, जीवामृत को प्रयोग ड्रिंप विधि, छिड़काव विधि, स्प्रिंकलर के द्वारा, खेत में कई तरीके से कर सकते हैं, खेत की जुताई के समय तरल जीवामृत को मिट्टी पर भी छिड़का जा सकता है। खेत में फसल की सिंचाई के समय पानी के साथ जीवामृत को देना पानी की नली में ड्रिपविधि से जीवामृत बूंद–बूंद कर टपकना चाहिए ताकि सभी फसल की सिंचाई हो सके। फलदार पेड़, सब्जियों फसलों इत्यादि पर छिड़काव विधि से भी तरल जीवामृत दिया जा सकता है।

*वि.व.वि./एशो. प्रौ. (गृह विज्ञान), **वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, के.वी.के. हैदरगढ़ बाराबंकी, ***वि.व.वि. (उद्यान विभाग), चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कानपुर

किसान भाई यह जानकारी जरूर रखें कि बरगद व पीपल के पेड़ हर समय ऑक्सीजन देने वाले पेड़ हैं। और ज्यादा ऑक्सीजन देने वाले पेड़ के नीचे जीवाणुओं की संख्या अधिक पाई जाती है। उसी तरह से विशेषज्ञ बताते हैं कि देशी गाय के गोबर में भी करोड़ो जीवाणु होते हैं जब हम इन जीवाणुओं से युक्त जीवामृत भूमि में पानी के साथ डालते हैं, तब यह सूक्ष्म जीव भूमि में अपने कार्य में लग जाते हैं तथा पौधें की आवश्यक पोषण तत्व उपलब्ध कराते हैं। यह प्राकृतिक कार्बन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम और अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों का एक प्रमुख स्रोत है।

जीवामृत के प्रयोग से होने वाले लाभ

- जीवामृत के प्रयोग से फलों व सब्जियों की फलत में वृद्धि होती है।
- पौधों के अधिक ठंड या अधिक गर्मी में सहन करने की क्षमता विकसित करता है।
- जीवामृत के प्रयोग से उगे फल, सब्जी, खाद्यान्न इत्यादि खाने में स्वादिष्ट व देखने में सुन्दर होते हैं।
- यह सभी प्रकार की फसलों जैसे धान गेहूँ, मक्का, ज्वार, बाजरा इत्यादि के लिए लाभकारी है। इसमें कोई भी हानिकारक तत्व या जीवाणु नहीं है।
- यह पौधों की प्रतिरोधक क्षमता बीमारियों से लड़ने के लिए क्षमता को बढ़ाता है।
- यह मिट्टी में से पोषक तत्वों को लेने व उनके उपयेग करने की क्षमता को बढ़ाता है। बीज की अंकुरण क्षमता में वृद्धि करता है।
- यह सब्जियां (टमाटर, भिंडी, करेला, मिर्च, लौकी, खीरा, कद्दू, मूली, गाजर, प्याज, आलू आदि) फलदार पौधों केला, संतरा, पपीता, अमरूद, इत्यादि 2 दलहनी व तिलहनी फसलों में प्रयोग किया जा सकता है।
- सब्जियों, फलों व खाद्यान्न फसलों की पैदावार में भी वृद्धि करता है।
- भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाता है।
- जीवामृत के लगातार प्रयोग करने से भूमि में केंचुओं और अन्य लाभदायक सूक्ष्म जीव जैसे शैवाल, कवक, बैक्टीरिया व प्रोटोजोआ इत्यादि में वृद्धि करता है। जो पौधों को आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करते हैं।

इस तरह प्रभावशाली जैविक खाद जीवामृत पोषण वाटिका में लगाएं व उगाई गई सब्जियों व फलों में प्रयुक्त कर ग्रामीण महिलाएं व किसान बन्धु अपनी पोषण वाटिका को स्वस्थ व उत्तम बना सकते हैं, जीवामृत खाद जैविक खाद से उत्पन्न फल व सब्जियां मानव जीवन के लिए स्वास्थ्यवर्धक तो है ही साथ ही रसायन उर्वरकों के अंधाधुंध प्रयोग में काफी हद तक कमी आएगी जो कि खेती की लागत भी कम करने में सहायक सिद्ध होगी।

विशेष नोटः जीवामृत बनाने के लिए किसी धातु के पात्र का प्रयोग/इस्तेमाल न करें बल्कि मिट्टी या प्लास्टिक के पात्र को प्रयोग में लाएं।

शूकर पालन एवं प्रबन्धन

डॉ0 विजय चन्द्रा*, डॉ0 डी0 पी0 सिंह** एवं अभिषेक गोविन्द राव***

हमारे देश का मुख्य व्यवसाय कृषि है, परन्तु छोटे व सीमान्त किसानों की संख्या अधिक होने के कारण खेती लाभदायक व्यवसाय नही बन सकता है। खेती के साथ पशुपालन जैसे गाय, भैंस, बकरी व भेड़ आदि जानवर भी पाले जाते हैं, जिससे ऐसे किसानों को रोजगार एवं आय में वृद्धि होती है। शूकर पालन वही किसान कर रहा है, जो एक विशेष वर्ग के हैं, जबकि विदेशों में शूकर पालन एक बड़ा व्यवसाय बन गया है। देशी शूकरों का शरीर भार विदेशी शूकरों के शरीर के भार का आधे से कम होता है। हमारे देश में आर्थिक रूप से कमजोर एवं पिछड़े वर्ग को शीघ्र एवं अधिक लाभ पहुँचाने के लिए शूकर पालन एक घरेलू व्यवसाय के रूप में अपनाने पर जोर देना चाहिए।

ऋण व्यवस्था

किसान भाई सार्वजनिक, क्षेत्रीय बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा राज्य सहकारी बैंकों से शूकर पालन के लिए ऋण ले सकते हैं। ये बैंक लघु एवं सीमान्त कृषकों एवं भूमिहीन कृषि मजदूरों को उनके व्यवसाय के लिए ऋण प्रदान करते हैं। यह बैंक शूकर पालन से सम्बन्धित कार्यों जैसे प्रजनन, पोषण एवं शूकर फार्म के लिए आवश्यक उपकरणों हेतु ऋण देते हैं। बहुचर्चित नाबार्ड भी इस क्षेत्र में ऋण देता है। किसान शूकर पालन के क्षेत्र में पूंजी लगाने पर सामान्य बीमा निगम के द्वारा पशु फार्म एवं उपकरणों का बीमा करा सकते हैं। ये बीमा कम्पनी 6 माह से तीन वर्ष के देशी, संकर एवं विदेशी सभी प्रकार के शूकरों का बीमा करती है।

उपयुक्त स्थान

जहां तक हो सके शूकर व्यवसाय कस्बों के पास ही स्थापित करें ताकि होटल, होस्टल और मेस से बचा हुआ भोजन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो, जो शूकर आहार के रूप में प्रयोग हो सके। बिजली, पानी, सड़क, शूकर उत्पादन की बिक्री के लिए बाजार भी हो ताकि प्रबन्धन एवं विपणन में सुविधा हो।

शूकर नस्लें

1. देशी शूकर

अपने देश का यह शूकर काले और स्लेटी रंग के बीच का होता है। इसका आकार छोटा, थूथन लम्बा एवं टांगे लम्बी व पतली होती है। वयस्क शूकरों की पीठ पर बड़े व कड़े बाल होते हैं, जिसका आर्थिक दृष्टि से महत्व है। देसी शूकर की शारीरिक वृद्धि एवं प्रति शूकर मांस का उत्पादन कम होता है, वयस्क शूकर का भार 30 से 40 किग्रा एवं प्रति मादा जन्म पर शावकों की संख्या 6–7 होती है। निम्न स्तर के उत्पादन गुणों के कारण फार्म पर इसका पालन लाभदायक नही होगा।

2. लार्ज व्हाईट यॉर्कशायर

इंग्लैंड में विकसित की गयी इस जाति के शूकर बड़े आकर, लम्बी गर्दन, चौड़ी छाती एवं सफेद रंग के होते हैं। इनके कान छोटे एवं खड़े होते हैं। इस जाति की प्रजनन शक्ति अधिक एवं मादायें दुधारू होती हैं, जो कि अधिक शावकों को जन्म देकर दुग्ध विमुक्ति आयु तक पाल लेती हैं। इस जाति के शूकरों की शारीरिक वृद्धि भी तीव्र होती है। प्रौढ़ नर का भार 350 से 400 किग्रा एवं प्रौढ़ मादा का भार 250 से 350 किग्रा के बीच होता है, समस्त भारत में इस नस्ल के शूकरों को नस्ल सुधार के कार्यक्रम में प्रयोग में लाया गया है। इसकी उपलब्धता प्रायः देश के सभी प्रान्तों में है।

3. मिडिल व्हाईट यॉर्कशायर

इस नस्ल के शूकर का आकार छोटा, मांस उत्तम, शरीर वृद्धि तीव्र, गति और प्रजनन क्षमता अधिक होती है। इसका रंग सफेद, सिर व थूथन छोटा, जबड़ा सीधा, टांगे सीधी व लम्बी तथा पुठ्ठे भारी होते हैं।

*सह–प्राध्यापक (पशु विज्ञान), **वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, ***यंग प्रोफेशनल–।। (निकरा), कृषि विज्ञान केन्द्र बसुली, महराजगंज।

प्रौढ़ नर का भार 250–350 किग्रा व प्रौढ़ मादा का भार 180–280 किग्रा के बीच होता है।

4. लैंडरेस

डेनमार्क में विकसित हुई इस नस्ल के शूकरों का रंग प्रायः सफेद, शरीर सपाट व लम्बा, पीठ गहरी तथा वर्गाकार होता है। इसमें चर्बी कम, टांगे छोटी, कान लटके और चेहरे को ढके हुये एवं थूथनी लम्बी होती है। इसकी प्रजनन शक्ति प्रबल होती है। प्रौढ़ नर का भार 200–300 व मादा का भार 180–320 किग्रा के बीच होता है। इस जाति के शूकरों की उपलब्धता देश की चुनिन्दा फार्मों जैसे अम्बाला, हिसार, हसरघट्टा हरिघंटा, कन्की एवं गोवा में है।

5. हैम्पशायर

यह नस्ल अमेरिका में उत्पन्न की गई है। इसके आगे का शरीर काला होता है तथा ऊपर के शरीर पर सफेद पट्टी होती है, पूँछ, सिर व पैर काले होते हैं, इसके कान खड़े होते हैं। यह उत्तम प्रजनन शक्ति एवं उत्तम मांस का होता है। शारीरिक वृद्धि अच्छी एवं घास पर भी पाली जा सकती है। काले रंग के होने के कारण यह शूकर देश के पूर्वी राज्यों में अधिक पसन्द किये जाते हैं।

6. टैमवर्थ

यह शूकर सुनहरे लाल रंग से गहरे लाल रंग का होता है। यह इंगलैंड के टैमवर्थ स्थान से जुड़ा है, इसकी प्रजनन शक्ति कम होती है। इसकी टांगे लम्बी, पार्श्व लम्बे, पीठ मजबूत, सिर पतला, थूथनी बड़ी, कान बड़े व खड़े होते हैं। वयस्क नर का वजन 200 से 360 तथा मादा का 180 से 320 किग्रा के बीच पाया जाता है। यह शूकर मुख्यतः मांस (बेकन) के लिए पाला जाता है।

7. बर्कशायर

काले रंग व मध्य आकार की यह नस्ल इंग्लैंड की पुरानी नस्लों में से एक है। चेहरे, टांगों व पूँछ के सिरे पर सफेद होते हैं एवं कान खड़े होते हैं। नर शूकरों का भार 270 से 350 तथा मादा शूकरों का भार 200 से 260 किग्रा होता है।

8. संकर नस्लें

देश में शूकर संकरण का कार्य विभिन्न परियोजनाओं में हो रहा है। ऐसे विकसित शूकरों में उष्मा एवं रोगों के प्रतिरोधक क्षमता विदेशी नस्लों से अधिक होती है। हालांकि इनके उत्पादन गुण विदेशी नस्लों से कुछ निम्न स्तर के होते हैं, यह शूकर फार्म स्तर पर पालन के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं।

शूकर की प्रबन्ध व्यवस्था

शूकर पालन को आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ बनाने तथा उससे अधिक से अधिक लाभ लेने के लिये आधुनिक तथा वैज्ञानिक विधि से बाड़े स्थापित करने चाहिए। इसके लिये जो निश्चित कार्यकलाप हैं तथा जिन पर शूकर पालक को ध्यान देना अति आवश्यक है, निम्न प्रकार हैः

शूकर बाड़े की व्यवस्था

1. शूकर बाड़े को सूखी तथा ऊँची जगह पर बनाना चाहिए।
2. उस स्थान पर बाड़े का निर्माण नही होना चाहिए जहां पर पानी रूकता हो तथा जिस क्षेत्र में ज्यादा वर्षा होती हो।
3. बाड़े की बराबर की दीवार 4 से 5 फीट ऊंची हो तथा इसके ऊपर लोहे के पाइप अथवा लकड़ी के लठ्ठे का प्रावधान होना चाहिए।
4. बाड़े की दीवार को नमी रोधी बनाने के लिये उस पर प्लास्टर कर देना चाहिए।
5. बाड़े की छत करीब 8–10 फीट ऊचाई पर होनी चाहिए।
6. बाड़े हवादार होना चाहिए।
7. बाड़े का फर्श मजबूत, पक्का, बराबर तथा फिसलन रहित हो। फर्श का ढलान करीब एक मीटर पर 3 से0मी0 होना चाहिए तथा नाली का प्रबन्ध होना चाहिए जिससे फर्श साफ तथा सूखा रहे।
8. प्रत्येक शूकर को खाने की नाद पर जगह 6–12 इंच मिलनी चाहिए।

9. खाने की नाद, नालियों तथा दीवार के कोने गोल होने चाहिए जिससे वे आसानी से साफ हो सकें।
10. प्रत्येक शूकर को उचित खाली स्थान मिलना चाहिए जो बने (ढके) हुए क्षेत्र से करीब दुगना होना चाहिए।
11. गर्मियों में शूकरों के लिये छाया तथा ठंडे पानी का प्रबन्ध होना चाहिए।
12. प्रत्येक नर शूकर तथा दूध वाली शूकरी के लिये अलग–अलग बाड़े होने चाहिए।
13. शूकर के मल–मूत्र का उचित रूप से निस्तारण होना चाहिए।
14. बिना दूध वाली, गाभिन शूकरी तथा मांस हेतु तैयार किये जाने वाले शूकर शावकों को समूह में रखा जा सकता है।

शूकर पशुओं को बाड़े में उचित माप के हिसाब से जगह मिलनी चाहिए। अलग–अलग पशुओं के लिए तथा उनकी उम्र के हिसाब से जगह का प्रबन्ध होना चाहिए। (सारिणी–1.0)

देखभाल एवं प्रबन्ध

नर

प्रजनन के लिए शूकरों को 4 गुणा 3 वर्ग मीटर के बाड़े में रखना चाहिए। गर्मी के दिनों में इन पर पानी का छिड़काव करें। केवल आठ माह से ऊपर के ही नर शूकरों को प्रजनन के काम में लाये परन्तु एक दिन में दो बार से अधिक प्रजनन में प्रयोग न करें। साधारणतः एक प्रजनन क्रिया 5 से 10 मिनट में पूरी होती है।

मादा

मादा शूकर की देखभाल अलग–अलग समय पर अलग–अलग प्रकार से की जानी चाहिए। मदकाल की अवस्था सामान्यतः 7 से 8 माह की उम्र में दिखने लगती है जो 2–3 दिन तक रहती है। मदकाल प्रत्येक 21 दिनों के अन्तराल पर प्रदर्शित होता है। जिसका सामान्य लक्षण योनि में लालिमा, योनि से सफेद चिपचिपा द्रव का रिसाव तथा योनि में सूजन आ जाना है। ऐसी मादा दूसरों के ऊपर चढ़ती है या दूसरे पशु उसके ऊपर चढ़ते हैं। ऐसी मादा थोड़ी–थोड़ी देर में बार–बार मूत्र त्याग करती है।

मदकाल की सही पहचान कर मादा का प्रजनन मदकाल प्रारम्भ होने के 24 घण्टे बाद उन्नत नस्ल के नर शूकर साँड़ के साथ कराना चाहिए। प्रजनन तीन दिनों तक, प्रथम दिन दो बार अर्थात् सुबह और सायं दूसरे दिन एक बार केवल सुबह तथा तीसरे दिन दो बार सुबह एवं सायं कराना चाहिए। ब्याने वाली मादा शूकर एवं उनके बच्चों के समूह की देख रेख में विशेष सावधानी रखनी होती है। बाड़े साफ तथा उसमें चारो ओर एक फुट हटकर 6 इंच ऊँचाई पर पाईप लगा देते हैं इससे मादा जब दीवार से सटकर बैठती है तब दीवार और मादा के बीच फँसकर बच्चे मरने से बचे रहते हैं। बाड़े में फर्श पर नरम घास, भूसा या पुआल की बिछावन भी रखना चाहिए।

शूकर शावकों की देख–रेख

शूकर मादा का प्रसव काल एक से सात घण्टे का होता

सारिणी 1.0
विविध प्रकार के शूकर–पशुओं के लिए वांछित स्थान का माप

पशुओं की किस्म	फर्श की जगह की माप (वर्ग मीटर प्रत्येक पशु) बनी हुई (ढकी हुई)	खुली जगह	एक बाड़े में ज्यादा से ज्यादा रखे जाने वाले पशु
शूकर सांड	6.0 – 7.0	8.8 –12.0	एक शूकर के लिये एक बाड़ा
बच्चे देने वाली शूकरी	7.0 – 9.0	8.8 – 12.0	एक शूकरी के लिये एक बाड़ा
मांस हेतु बढ़ते हुये शूकर शावक (3–5 महीने की आयु)	0.9 – 1.2	0.9 – 1.2	30
मांस हेतु बढ़ते हुये शूकर शावक (5 महीने से अधिक आयु)	1.3 – 1.8	1.3 – 1.8	30
दूध सुखी शूकरियां	1.8 – 2.7	1.4 – 1.8	3–10

है। एक ब्याँत में मादा के 7 से 12 बच्चे (संकर) तक पैदा होते हैं। यह संख्या मादा की एवं नर की प्रजाति पर निर्भर करता है। बच्चों के जन्म के बाद कमरे की धुलाई फिनायल मिले पानी से करनी चाहिए। 6 से 8 सप्ताह तक बच्चों को मादा के साथ ही रखना चाहिए और इस अवधि में इनकी विशेष देखभाल करना चाहिए।

नये जन्में बच्चों के आठ दाँत होते हैं जिन्हें प्रथम सप्ताह में काट देना चाहिए, ताकि वे बच्चे एक दूसरे को काटकर घाव न पहुँचा सके। इन बच्चों को एक मिली इमफरान का टीका चौथे व चौदहवें दिन मांसपेशी में लगायें। अगले दिन एक मिली बी–काम्लेक्स भी देवें। पन्द्रह दिन बाद बच्चों को विशेष बाड़ों में क्रीप राशन दे सकते हैं, ताकि बच्चे मादा पर दूध के लिए निर्भर कम रहें और मादा कमजोर न हो जाये। पाँच से आठ सप्ताह के बीच शूकर पालकों को शावकों को फीवर तथा खुरपका–मुंहपका का टीका देना चाहिए। नर शूकरों को जिनका उपयोग भविष्य में साँड़ के रूप में नही करना है, इसी समय बधिया करना चाहिए, ऐसा करने से इनकी भार वृद्धि तेजी से होती है। छः से आठ सप्ताह के बाद बच्चों को मादा से अलग कर देना चाहिए।

शूकर आहार

शूकर ऐसा जानवर है जो कृषि एवं उद्योग के बचे हुए कचरे आदि को भोज्य पदार्थ के रूप में ले लेता है। इस प्रकार बहुमूल्य अनाज मनुष्यों के भोजन के लिए छोड़ देता है। सस्ते राशन की चर्चा के पहले प्रमाणिक राशन के अवयव नीचे दिये गये हैं।

नये शूकर बच्चों को जन्म से 14 दिन बाद एक–एक विशेष बाड़े में रखकर दूध के साथ क्रीप राशन तब तक देते हैं, जब तक उन्हें दुग्ध विमुक्ति न कर दिया जाय। विमुक्ति बाद शूकर बच्चों को 35 किग्रा वजन होने तक प्रचुर मात्रा में राशन देते हैं। इसके बाद इन्हें फिनिशर राशन देते हैं।

वैसे तो प्रायः शूकरों को बड़े फार्मों पर बना बनाया आहार दिया जाता है। परन्तु छोटे किसान ऐसे आहार अधिक मूल्य के कारण नही खिला सकते हैं। अतः उचित होता कि उपलब्धता अनुसार निम्न पदार्थों में से संतुलित आहार विभिन्न वृद्धि स्तरों पर खिलाने का प्रबन्ध करें।

1. घरों, होटलों, होस्टलों एवं मिलिट्री मेस आदि से बचे भोजन को शूकरों को खिला सकते हैं। परन्तु खिलाने से पहले इसमें से हानिकारक पदार्थ हटा लें और अच्छी प्रकार उबाल लें।
2. शीरा बड़े जानवरों के लिए ऊर्चा का विशेष स्त्रोत है। बढ़ते शूकरों में राशन का 20 प्रतिशत तथा बड़े शूकरों से 40 प्रतिशत तक शीरा खिलाया जा सकता है। छोटे शूकरों में इसका अधिक उपयोग दस्त लगा सकता है।
3. बेकरी का बचा–खुचा सूखा पदार्थ भी शूकर राशन के रूप में दे सकते हैं।
4. आलू सस्ता होने पर शूकर आहार के तीन चौथाई भाग तक पूर्ति कर सकते हैं।
5. शकरकन्दी शूकरों का स्वादिष्ट आहार है तथा ऊर्जा का अच्छा स्त्रोत है। शूकर राशन का 30 से 50 प्रतिशत भाग इससे पूरा कर सकते हैं। परन्तु छोटे शूकरों को इसे न खिलायें।
6. सब्जी मण्डी की बची हुई सब्जियाँ गाजर, चुकन्दर, गोभी आदि भी शूकर आहार में मिलायें जा सकते हैं।
7. चावल की भूसी एवं पालिश भी शूकरों के आहार के 30 से 50 प्रतिशत तक पूर्ति कर सकता है, परन्तु छोटे शावकों को यह दोनों राशन नही खिलाना चाहिए।
8. गेहूँ या चावल के टुकड़े पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने पर कुल शूकर राशन का 60 प्रतिशत तक इसको दे सकते हैं।

उपरोक्त पदार्थ के अतिरिक्त पक्षी मांस के बचे भाग, हरा चाय, केले के पत्ते, शुबबूल के पत्ते व फलियाँ, पपीता, अनानास, कद्दू एवं खराब टमाटर आदि को

सस्ते उपलब्ध होने पर आवश्यकतानुसार आहार के रूप में शूकर आहार का 5 से 20 प्रतिशत तक दे सकते हैं। प्रचलित भोज्य पदार्थ देते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखें कि सभी पशुओं को उचित मात्रा में प्रोटीन तथा ऊर्जा मिल रही है।

पानी की आवश्यकता

शूकर बाड़े में स्वच्छ पीने योग्य पानी की व्यवस्था करनी चाहिए ताकि प्रत्येक उम्र के शूकरों को समुचित मात्रा में पानी मिल सके। अनुमानतः आठ से बारह सप्ताह के बच्चों को लगभग 4 लीटर, 12 से 25 सप्ताह तक के शूकरों को 6 – 8 लीटर, गर्भवती शूकरियों को पहले तीन माह तक 10–20 लीटर, बच्चों को दूध पिलाने वाली शूकरियों को तथा नर शूकरों को 20 से 30 लीटर पानी प्रतिदिन प्रति शूकर के लिए आवश्यक होता है।

रोगों से बचाव

1. पशुओं में किसी भी तरह के रोगों के लक्षण जैसे खाना कम अथवा बिल्कुल न खाना, बुखार, मुंह, नाक, आंख आदि से स्राव का आना, पशुओं के व्यवहार में बदलाव आदि के होने पर समझ लेना चाहिए कि पशु रोगी है और नजदीक के पशुचिकित्सक से पशु का परीक्षण एवं उचित इलाज कराना चाहिए।
2. पशुओं को रोग न हो इसके लिये उचित होगा कि शूकरों का पहले से ही समय रहते टीकाकरण करा दिया जाये।
3. शूकरों में संक्रामक रोग के प्रकोप होने की स्थिति में रोगी पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग कर देना चाहिए तथा रोग की रोकथाम के लिये पशुचिकित्सक से सलाह लेनी चाहिए।
4. शूकर पशुओं को समय–समय पर परजीवियों के खिलाफ दवाइयां देते रहना चाहिए। पशुओं के मल का अन्तः परजीवियों के अंडो की उपस्थिति के लिये परीक्षण करते रहना चाहिए। यदि मल में परजीवियों के अंडे मिलते हैं तो पशुओं को परजीवीरोधी दवाइयां देनी चाहिए।
5. स्वच्छता बनाये रखने के लिये समय–समय पर पशुओं को स्नान कराते रहना चाहिए।
6. शूकरों के प्रमुख रोगों से बचाव के लिये निम्न प्रकार से टीकाकरण कराना चाहिएः

1. हाग कालरा रोग

प्रथम टीका 3–4 सप्ताह की उम्र, द्वितीय टीका 7–8 सप्ताह की उम्र तथा तृतीय टीका 6–7 माह की उम्र पर लगाना चाहिए।

2. स्वाइन इरीसिपेलस रोग

प्रथम टीका 6–10 सप्ताह की उम्र, द्वितीय टीका प्रथम टीके के 2–4 सप्ताह पश्चात् लगाना चाहिए।

3. स्वाइन फीवर

प्रथम टीका 2–6 सप्ताह की उम्र, द्वितीय टीका प्रथम टीके के 4–6 सप्ताह बाद देने पर अच्छी रोग प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न होती है।

सारिणी–2.0
शूकरों के लिये संतुलित आहार

अवयव	क्रीप राशन	35 किग्रा भार के शूकर का राशन	35 किग्रा भार से अधिक भार के शूकर का राशन
मक्का मोटा पिसा हुआ	60.0	35.0	24.0
मूँगफली की खली	20.0	10.0	10.0
मछली का चूरा	10.0	6.0	6.0
गेहूँ का चोकर	8.0	47.0	30.0
चावल का छिलका	–	–	28.0
मिनरल मिश्रण	1.5	1.5	1.5
नमक	0.5	–	–
ग्रो–ब्लेड	0.2	0.2	0.2

पशुओं के नस्ल सुधार में जैव-प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग एवं महत्व

डा0 प्रमोद कुमार, विभा यादव* रबीन्द्र कुमार** एवं डॉ0 सुशान्त श्रीवास्तव***

जैव प्रौद्योगिकी का व्यापक अर्थ जीवित वस्तुओं से है। जैव प्रौद्योगिकी के दुग्ध, पोल्ट्री और मत्स्य एवं कृषि के क्षेत्र में उत्पादों में सुधार करने में मदद करती है। जैव प्रौद्योगिकी से समाज में विशेषकर भारत के ग्रामीण क्षेत्रों के लिए आसान रोजगार सृजन और कम लागत से सतत् विकास के लिए स्वास्थ पर्यावरण तैयार करने में मदद मिलती है। जैव प्रौद्योगिकी से कृत्रिम गर्भाधान, ट्रांसजेनिक पशु, भ्रूण हस्तांतरण, कम तापमान में वीर्य और भ्रूण संवर्धन, क्लोनिंग इत्यादि मे सहायक सिद्व हुआ है।

कृत्रिम गर्भाधान

कृत्रिम गर्भाधान डेरी फार्म पर पशुओं के आनुवंशिक सुधार के लिए एक सतत् उपयोग मे आने वाली सबसे महत्वपूर्ण तकनीक है। यह तकनीक कई कारणों से इस्तेमाल की जाती है, जैसे उत्तम नस्ल सुदूर स्थिति सॉड़ों के जननद्रव्य का अधिकतम उपयोग, शारीरिक अक्षमता वाले अनउपयोगी सॉड़ो के अनावश्यक रखरखाव के खर्च से बचत। कृत्रिम गर्भाधान के लिए उत्तम नस्ल के सॉड़ों के संरक्षित जननद्रव्य को विश्व मे बहुत कम खर्च मे आसानी से निर्यात करने का अच्छा विकल्प देता है। कृत्रिम गर्भाधान के द्वारा यौन जनित संक्रमण से होने वाले कई संभावित रोगों पर नियंत्रण मे सहायक सिद्व हुआ है।

ट्रांसजेनिक पशु

ट्रांसजेनिक पशु वे पशु है जिनके जीनोम में विदेशी जीन डाला जाता है। विदेशी जीन पुनः संयोजक डीएनए का उपयोग कर निर्मित किया जाता है। ट्रांसजेनिक प्रौद्योगिकियों का प्रयोग फार्म पर पशुओं में दूध और मांस का उत्पादन बढ़ाने के लिए मानव चिकित्सा उपयोग के लिए प्रोटीन का उत्पादन के लिए किया जाता है। इसके अलावा जानवरों से मनुष्य में अंग–प्रत्यारोपण प्रक्रियाओं में किया जाता है।

क्लोनिंग

क्लानिंग का तात्पर्य है कि अलैंगिक विधि से एक जीव से दूसरा जीव तैयार करना। स्कॉटलैंड के रोसीलिनन संस्थान के वैज्ञानिक इयान विल्मुट द्वारा 5 जुलाई, 1996 में डॉली नाम के व्यस्क भेड़ की कोशिका से क्लोन तैयार किया गया था। इस तकनीकी का उपयोग लुप्त हो रही प्रजातियों के संरक्षण, कृषि, औषधि उत्पादन, जैव चिकित्सा अनुसंधान तथा मानव रोगों के उपचार के लिए एक महत्वपूर्ण तकनीक हैं।

पुनः संयोजनक डीएनए अणु

पुनः संयोजनक डीएनए, दो या दो से अधिक भिन्न डीएनए अणु खंडों के संयोजन से निर्मित होता है। पुनः संयोजक डीएनए अणु सूखे और गर्मी के प्रतिरोध के रूप में, इंसुलिन के उत्पादन में हेपेटाइटिस बी, सिकल सेल एनीमिया, सिस्टिक फाइब्रोसिस इत्यादि के इलाज में उपयोगी होता है।

भ्रूण उत्पादन एवं प्रत्यारोपण

भ्रूण प्रत्यारोपण वह तकनीक है, जिनके द्वारा भ्रूण एक दाता से एकत्र कर ग्राही में स्थानांतरित किया जाता है। यह तकनीकी घरेलू जानवरों की लगभग सभी प्रजातियों और विदेशी जानवरों की कई प्रजातियों के लिए प्रयोग की गयी है। इस तकनीकी के द्वारा भेड़ और गौ वंश में आनुवंशिक सुधार के लिए नए अवसर प्रदान करती है। महंगी होने के कारण इस तकनीक का इस्तेमाल मुख्य रूप से वाणिज्यिक उत्पादन के बजाय नस्ल सुधार के लिए किया जा रहा है। भ्रूण स्थानान्तरण के माध्यम से जानवरों में अधिक प्रजनन दर, गहन और अधिक सटीक चयन, पीढ़ी में कम

*सहायक प्राध्यापक पशु माइक्रोबायोलाजी विभाग, **सहायक प्राध्यापक पशु जनन एवं प्रसूति विभाग, ***प्राध्यापक पशु जनन एवं प्रसूति विभाग, सहायक प्राध्यापक पशु शरीर किया एवं जैव रसायन विज्ञान विभाग आचार्य नरेन्द्र देव कृशि एवं प्रोद्योगिकी विश्वविद्याालय कुमारगंज, अयोध्या, उ0प्र0 224229

अंतराल और इन सभी के साथ आनुवंशिक सुधार की दर में तेजी लाने में सफलता मिली है।

कम तापमान में वीर्य संरक्षण

कम तापमान में संरक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कोशिकाओं या ऊतकों को –196 डिग्री सेल्सियस तापमान तरल नाइट्रोजन में संरक्षित करते हैं। कम तापमान पर जैविक गतिविधि जिसमें जैव रासायनिक प्रतिक्रियांएं जैसेः कोशिकाओं या ऊतकों की मौत प्रभावी रूप से बंद हो जाती है। जैव संरक्षण का सबसे ज्यादा उपयोग शुक्राणु, भ्रूण, अंडे और डीएनए को संरक्षित करने में किया जाता है। भ्रूण संवर्धन, तकनीक आनुवांशिक सुधार कार्यक्रम का एक अभिन्न हिस्सा है और जर्मप्लाज्म संरक्षण कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण है।

भ्रूण विभाजन

भ्रूण विभाजन लाभकारी तकनीक है जिसमें एक भ्रूण को अनेक हिस्सों में बांटा जाता है। एक भ्रूण से दो–चार या कभी–कभी सोलह भ्रूण भी मिल सकते हैं। भ्रूण बंटवारे का उद्देश्य प्रदाता से एक से अधिक संख्या में संतान प्राप्ति करना है।

जैव–प्रौद्योगिकी के सहारे फसलों की संकर किस्में तैयार करने के बाद वैज्ञानिकों ने जीवों का क्लोन या प्रतिकृति बनाने का जो क्रांतिकारी सपना देखा, वह 5 जुलाई,1996 के दिन साकार हुआ था। इसी दिन वैज्ञानिकों ने पहले स्तनधारी के रूप में मादा भेड़ डॉली बनाने में सफलता प्राप्त की। डॉली को तैयार करने का श्रेय अंग्रेज जीव वैज्ञानिक इयान विल्मट, कैथ कैंपबेल और उनकी टीम को जाता है। चूंकि यह प्रक्रिया न्यूक्लियर ट्रांसफर के तहत पूरी की गई थी, हालांकि डॉली का देहान्त 14 फरवरी, 2003 को ही हो गया, पर एक स्वस्थ क्लोन के रूप में भेड़ के निर्माण ने इस तथ्य को भी मजबूती दी कि किसी अंग विशेष की कोशिकाओं का न्यूक्लियर ट्रांसफर कर एक पूरी संरचना तैयार की जा सकती है।

न्यूक्लियर ट्रांसफर ऐसी तकनीक है, जिसमें एक कोशिका के नाभिक की दूसरी कोशिका के नाभिक से अदला–बदली कर एक नई कोशिका बनाई जाती है, जो स्वभावतः अपनी मातृ कोशिकाओं से बिल्कुल अलग होती है। इस तकनीक का आविष्कार 1975 में गर्डन नाम के वैज्ञानिक ने किया था। वहीं, क्लोनिंग एक ऐसी जैविक प्रक्रिया है, जिसमें किसी क्लोन को तैयार करने के लिए तीन तरीके अपनाए जाते हैं– 1 अणु संबंधी क्लोनिंग 2 कोशिका संबंधी क्लोनिंग 3 स्टेम सेल क्लोनिंग। आज सबसे ज्यादा स्टेम सेल क्लोनिंग को महत्व दिया जा रहा है। बहरहाल क्लोनिंग को लेकर वैज्ञानिकों में भी एक राय नहीं है, विशेषकर मानव क्लोनिंग के प्रति ईश्वर के कार्यो में हस्तक्षेप जैसे नैतिक पक्ष छोड भी दिए जाए, तो इसके दुरूपयोग की प्रबल आंशका है।

दुग्ध उत्पादन में पोषण का महत्व

डी. के. श्रीवास्तव*, एस.एन.सिंह**, एस.एन.लाल*** एवं ए.पी. राव****

पशुओं में कम उत्पादन क्षमता, ब्याने में अधिक अंतर, कमजोर स्वास्थ्य एवं दुग्ध उत्पादन में कमी अच्छे पशु प्रबंधन न होने का ही परिणाम है। वैज्ञानिक विधि को अपनाकर अच्छे पशु प्रबंधन के माध्यम से वर्तमान पशुओं की उत्पादन क्षमता में लगभग 30 से 40 प्रतिशत तक की वृद्धि की जा सकती है। पशु प्रबंधन जितना ही अच्छा होगा उसी के अनुपात में डेयरी व्यवसाय लाभप्रद रहेगा। पशु प्रबंधन से तात्पर्य समय से प्रजनन, संतुलित आहार, पशु स्वास्थ्य एवं टीकाकरण से है । पशुपालकों को चाहिए कि वह अपने पशुओं की ऐसी व्यवस्था करें कि बच्चा देने के 3 माह के बाद निश्चित रूप से पशु गर्भित हो जाय।

पशुपालन व्यवसाय में पशु आहार प्रबंधन एक महत्वपूर्ण कार्य है। अपने देश में पशुओं का पोषण कृषि उपज पर निर्भर करता है। चारे व दाने की कमी के कारण पशुओं को निम्न कोटि का चारा जैसेः– भूसा, दाना आदि पर निर्वाह करना पड़ता है। पशुपालकों के पास आवश्यकतानुसार चारा –दाना भी उपलब्ध नहीं है ,जिसके कारण पशुओं को भरपेट आहार नहीं मिल पाता है। प्रायः पशुपालक केवल गाभिन व दुधारू पशुओं को ही पौष्टिक आहार देते है। कुपोषण युक्त आहार से शारीरिक क्रियाओं के लिए आवश्यक पोषक तत्व पूरी मात्रा में नहीं होते, ऐसे भोजन में ऊर्जा, प्रोटीन ,वसा ,विटामिन एवं खनिजों की कमी रहती है जिससे पशुओं के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

1.ऊर्जा का महत्व

ऊर्जा का शारीरिक विकास, परिपक्वता, प्रजनन दर, व्यात व आयु आदि पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। आहार में ऊर्जा की कमी से पशुओं के शरीर भार में वृद्धि एवं परिपक्वता आयु प्रभावित होती है ,जिसके कारण पशुओं में गर्मी के लक्षण देर से प्रकट होते हैं तथा गाभिन पशु में गर्भपात की संभावना अधिक होती है। इसलिए पशुओं को भरपेट संतुलित भोजन प्रतिदिन उपलब्ध कराना चाहिए ।

2.प्रोटीन का महत्व

प्रोटीन शारीरिक वृद्धि के लिए अति आवश्यक है इससे कोशिकाओं, मांस पेशियो, त्वचा एवं रक्त का निर्माण होता है। प्रोटीन दूध ,अंडा, मांस एवं ऊन उत्पादन तथा प्रजनन हेतु आवश्यक होता है। आवश्यकता से अधिक होने पर प्रोटीन शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है तथा पाचक रस, कुछ हारमोंस व विटामिन के बनने में प्रोटीन सहयोग प्रदान करता है। प्रोटीन दाल वाले चारों ,खलियो, दाल की चूनी आदि भोज्य पदार्थों से पशुओं को उपलब्ध होता है।

3.विटामिन का महत्व

पशुओं के लिए प्रोटीन और ऊर्जा की अपेक्षा विटामिन की आवश्यकता बहुत कम होती है। विटामिन जल विलेय एवं वसा विलेय होते हैं । जल विलेय विटामिन "बी" कांप्लेक्स का पशुओं के आमाशय में संश्लेषण हो जाता है किंतु बसा विलेय विटामिन जैसे "डी " व "ई" का संश्लेषण नहीं होता है। पशुओं को विटामिन "डी " धूप से एवं विटामिन "ई" भोज्य पदार्थों से पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है। पशुओं को विटामिन "ए" की पूर्ति हेतु हरा –चारा प्रतिदिन खिलाना चाहिए क्योंकि इसकी कमी से पशुओं के प्रजनन पर प्रभाव पड़ता है ,जिससे गर्भपात ,जेर गिरने में समस्या, अंधे एवं मृत बच्चे का पैदा होना आदि समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं।

4.खनिजों का महत्व

पशु भोज्य पदार्थों में खनिज लवण कम मात्रा में ही पाए जाते हैं। मुख्यतः कैल्शियम ,फास्फोरस कापर, कोबाल्ट, जिंक ,मैग्नीज, आयोडीन आदि अत्यावश्यक है क्योंकि इनकी कमी से शरीर भार में वृद्धि ,दुग्ध

विषय वस्तु विशेशज्ञ(पशु विज्ञान) एवं अध्यक्ष, कृशि विज्ञान केन्द्र,बस्ती, वरिश्ठ वैज्ञानिक(पशु विज्ञान),प्रसार निदेशालय,आ0न0दे0कृ0एवं प्रौ0वि0वि0 कुमारगंज,अयोध्या, निदेशक प्रसार,आ0न0दे0कृ0एवंप्रौ0वि0वि0 कुमारगंज,अयोध्या

उत्पादन एवं प्रजनन प्रभावित होता है साथ ही साथ पशु में अनियमित रूप से गर्मी आने लगती है या बंद हो जाती हैं तथा गाभिन पशुओं में गर्भपात की संभावना रहती है और पशु बहुत कमजोर पैदा होते हैं। खनिजों की पूर्ति हेतु पशुओं को 50 ग्राम खनिज लवण मिश्रण ,50 ग्राम नमक एवं 50 ग्राम खड़िया मिट्टी प्रतिदिन पशु को दें तथा छोटे पशुओं में यह मात्रा आधी कर देनी चाहिए।

पशुओं को जीवित रहने, वृद्धि एवं उत्पादन के लिए चारा–दाना जरूरी है, इसके लिए यह ।आवश्यक है कि पशुओं को संतुलित आहार दिया जाए संतुलित आहार न मिलने से पशुओं की उत्पादन क्षमता में कमी आ जाती है एवं अनेक बीमारियों से ग्रसित होने की संभावना बढ़ जाती है। आवश्यकता से अधिक आहार खिलाने से आहार का अधिकांश भाग बिना पचे ही गोबर और पेशाब द्वारा शरीर से बाहर निकल जाता है। इसलिए संतुलित आहार आर्थिक दृष्टिकोण से आवश्यक है । मुख्य रूप से आहार निम्न प्रकार के होते हैं:–

अ. निर्वाह आहार

दाना–चारा की वह मात्रा जो पशुओं को केवल उसकी शरीर रक्षा हेतु दी जाती है।

ब. वृद्धि या उत्पादक आहार

यह आहार की वह मात्रा है जो एक पशु को उत्पादन कार्य अथवा वृद्धि के लिए निर्वाह आहार के अलावा अलग से दी जाती है।

स. संतुलित आहार

संतुलित आहार वह आहार है जिसमें एक पशु की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करने तथा उसे स्वस्थ रखने के लिए सभी आवश्यक पोषक तत्व (शर्करा, प्रोटीन ,वसा ,खनिज विटामिन व पानी) ठीक अनुपात में उचित मात्रा में मौजूद हों, जो पशु के शरीर भार में वृद्धि, प्रजनन क्षमता एवं उत्पादन के स्तर को बनाए रखने की क्षमता रखता हो।

पशुओं को आहार खिलाते समय या आहार की गणना करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

1. पशुओं की आवश्यकतानुसार आहार का निर्धारण करना चाहिए।
2. पशुओं को जो भी आहार दिया जाए वह स्वच्छ, संतुलित, स्वादिष्ट, सुपाच्य, पौष्टिक तथा सस्ता होना चाहिए। पौष्टिक तत्व में प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, खनिज लवण, विटामिन एवं जल आते हैं, जिनकी आहार में पर्याप्त मात्रा होनी चाहिए।
3. पशु को नित्य नियमित समय पर निश्चित मात्रा में आहार देना चाहिए । दो आहार के बीच में कम से कम 8 घंटे का अंतर होना चाहिए तथा नांद में थोड़ा–थोड़ा कई बार में आवश्यकतानुसार दाना –चारा डालना चाहिए।
4. पशु की खुराक में भूसा, हरा –चारा तथा दाने का मिश्रण शामिल होना चाहिए ,जिससे उनको आवश्यकतानुसार सभी पोषक तत्व उपलब्ध हो सकें।
5. आहार को रुचिकर बनाने के लिए चारे को काटकर तथा दाने को भिगोकर खिलाना चाहिए।
6. आहार (राशन) में एकाएक परिवर्तन न करके धीरे–धीरे बदलना चाहिए, जिससे पशुओं की भोजन प्रणाली पर कुप्रभाव न पड़े।
7. हरा –चारा रसीला तथा अच्छे पोषक तत्व वाला होना चाहिए। हरे –चारे की कटाई पुष्पावस्था में करनी चाहिए क्योंकि इस समय समस्त पोषक तत्व अधिक मात्रा में मौजूद रहते हैं। जो कि उत्पादन एवं वृद्धि पर अपना सीधा प्रभाव दिखाते हैं। पुष्पावस्था के उपरांत हरे–चारे की कटाई करने पर मौजूद पोषक तत्व दाने में परिवर्तित होने लगते हैं और वे दाने बिना पचे हुए ही गोबर के माध्यम से बाहर निकल जाते हैं। हरे –चारे के खेत में पुष्पावस्था लगभग एक ही समय पर आती है, इससे बचने के लिए हरे –चारे का "हे" बनाकर संरक्षित कर लेना चाहिए।

8. प्रोटीन की पूर्ति के लिए दो दाल वाली हरे –चारे की फसल का चुनाव अवश्य करना चाहिए । इसमें बरसीम ,लूसर्न व लोबिया मुख्य है। एक दाल वाली हरे –चारे के साथ लोबिया अवश्य मिलाकर बोना चाहिए।

9. हरा चारा इस प्रकार का होना चाहिए जो कि कम क्षेत्र में अधिक से अधिक पौष्टिक उत्पादन दे सके । इस कार्य के लिए बहुकटाई वाले हरे–चारे की फसल का चुनाव करना चाहिए।

10. सूखा पड़ने पर ज्वार, बाजरा आदि में हाइड्रोसाइनिक अम्ल अधिक मात्रा में पाया जाता है। इसको खाने से पशु की मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार सू–बबूल में माइमोसिन,पुआल तथा अनेक पत्तियों में आक्जैलेट और गौसीपाल आदि अनेक जहर पशु आहार में हो सकते हैं, इससे पशुपालकों को सतर्क रहना चाहिए। उक्त आहार को खिलाने से पहले यदि संभव हो तो उपचारित करके खिलाया जाए।

11. आहार ताजा एवं अच्छा होना चाहिए। हरे –चारे में विटामिन "ए" सबसे अधिक पाया जाता है । बासी एवं सड़े हुए चारे हानिकारक होते हैं।

12. पशु आहार की गणना पशु के शरीर भार के आधार पर करना चाहिए। 100 किलोग्राम शरीर भार पर गाय एवं भैंस को क्रमशः 2.5 किलोग्राम एवं 3.0 किलोग्राम शुष्क पदार्थ देना चाहिए।

13. पशुओं को उनके शुष्क पदार्थ की पूर्ण आवश्यकता का 2/3 भाग मोटे चारे (सूखे. हरे) तथा शेष 1/3 भाग दाने से दिया जाना चाहिए।

14. दुग्ध उत्पादन हेतु गाय एवं भैंस को क्रमशः 3.0 किलोग्राम एवं 2.5 किलोग्राम दूध पर 1.0 किलोग्राम दाने का मिश्रण देना चाहिए।

15. दुग्ध उत्पादन हेतु दाने का मिश्रण बनाते समय मक्का या ज्वार या बाजरा या गेहूँ या जौ का दाना 20 भाग, दाल चूनी 20 भाग, गेहूँ का चोकर 20 भाग, राईस पालिश 15 भाग एवं सरसो/ंतिल व अलसी की खली 25 भाग मिलाकर बनाना चाहिए।

16. प्रत्येक पशु को 50 ग्राम खनिज लवण मिश्रण, 50 ग्राम खाने वाला नमक एवं 50 ग्राम खड़िया मिट्टी प्रतिदिन देना चाहिए।

17. पशु के आहार में कम से कम 8 से 10 किलोग्राम हरा चारा प्रतिदिन प्रति पशु अवश्य देना चाहिए क्योंकि इससे खनिजों एवं विटामिन की पूर्ति काफी हद तक पूरी हो जाती है।

18. हरे तथा सूखे चारे का अनुपात 3:1 का होना चाहिए।

19. पशु को आहार में बरसीम या लूर्शन या लोबिया हरा चारा खिलाया जा रहा है तो उस समय– पर दाने की मात्रा कम की जा सकती है, क्योंकि बरसीम अधिक पौष्टिक होने के कारण कुछ हद तक दाने की पूर्ति कर देती है।

20. पशुओं को राशन (दाना–चारा) देते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पशु की नांद साफ हो।

21. सूखे चारे (भूसा/पुआल)तथा दाना को पानी में भिगोकर खिलाने से पशुओं को पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ जाती है।

22. पशुओं को हमेशा ताजा एवं स्वच्छ पानी दो से तीन बार पिलाना चाहिए। जिस तरह का जल (पानी) मनुष्य पीने के लिए प्रयोग में लाता है, उसी प्रकार का जल (पानी) पशुओं को पिलाना चाहिए।

23. पशुपालकों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पशु आहार सस्ता एवं संतुलित हो।

पशुपालक भाई यदि उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर अपने पशुओं को संतुलित आहार खिलाते हैं तथा अनुकूलतानुसार वातावरण (मौसम) के हिसाब सें रहने की व्यवस्था, समय पर कृमि– नाशक दवा का प्रयोग एवं टीकाकरण करवाते हैं तो वे पशुपालन को स्वरोजगार के रूप में अपना कर अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ कर सकते हैं।

भैस में गर्मी आने के लक्षण एवं कृत्रिम गर्भाधान

डॉ0 सुशान्त श्रीवास्तव1 एवं डा0 डी0पी0 सिंह2

गाय और भैस हमारा मुख्य पशु है और दुधारु पशुओं में इसके आर्थिक महत्व को देखते हुए पशु पालकों को इसके प्रजनन के बारे में आवश्यक जानकारी होनी चाहिए। पूर्वाचल के अधिकांश जिलो में ज्यादातर पशु चराई पर निर्भर हैं, जिससे उन्हें पर्याप्त मात्रा में आवश्यक पोषण की प्राप्ति नहीं हो पाती और फलस्वरूप पशु कमजोर और गर्भित होने में समस्याएं आतीं है। डेयरी पशुओं में गर्मी की पहचान करना तथा सही समय पर कृत्रिम गर्भाधान कराना सफल डेयरी फार्मिंग का महत्वपूर्ण भाग होता है। पशुओं का मुख्य उत्पाद दूध एवं बच्चा एक सफल प्रजनन के बाद ही प्राप्त होता है। अतः हमें जनन की ऐसी व्यवस्था रखनी चाहिए कि पशुओं से हर साल बच्चा मिलता रहे तभी हमें अधिक लाभ मिल सकता है। किसानों से जनन से संबंधित एक शिकायत अक्सर सुनने को मिलती है कि पशु रुकता नहीं और बोलता नहीं है। पशु का न बोलना और गर्भ का न ठहरना किसानों को बहुत अधिक आर्थिक नुकसान पहुंचाता है। इसी कारण पशुओं का ब्यात अंतराल भी काफी बढ़ जाता है। सफल प्रजनन के लिए पशु के जनन संबंधी कार्य विधि, समस्याएं और उनके निराकरण संबंधी जानकारी पशु पालकों के लिए आवश्यक है।

मादा पशु की जनन क्षमता इसी से परखी जाती है कि उसके दो ब्यांत के बीच कितना अंतर है। दो ब्यांत के बीच का अंतराल दो प्रमुख भागों में बांटा जा सकता है। पहला प्रसव से गाभिन होने तक का समय तथा दूसरा गाभिन होने से लेकर बच्चा देने तक का समय जो कि निश्चित रहता है। इस दूसरे अतंराल को गर्भकाल कहते हैं। भैंस में यह 310 दिन होता है। अतः हम कह सकते हैं कि यदि भैंस बच्चा देने के बाद 90 दिन के अंदर गाभिन हो जाये तभी 310 दिन गर्भकाल को जोड़कर, अगला बच्चा उससे 400 दिन के अतंराल पर प्राप्त किया जा सकता है। भैंस के गर्मी में आने पर उसे दो प्रकार से गाभिन किया जा सकता है – प्राकृतिक विधि द्वारा या कृत्रिम विधि द्वारा। प्राकृतिक विधि में भैंस को सॉड़ से मिलाते हैं। इस विधि में गर्भधारण दर तो अपेक्षाकृत अधिक हो सकती है, परन्तु आवारा नस्ल के सॉड़ के कारण आने वाली पीढ़ी में धीरे–धीरे भैंसों की नस्ल खराब होती रहती है। इस कारण उनकी संतति का दूध उत्पादन कम होने लगता है। वैज्ञानिक सलाह यही दी जाती है कि भैंस के गर्मी में आने पर उसे कृत्रिम विधि द्वारा अच्छी नस्ल के सॉड़ के वीर्य से गर्भधारण करवायें।

कृत्रिम गर्भाधान क्या है

कृत्रिम गर्भाधान प्रजनन की ऐसी विधि है जिसमें सॉड़ के वीर्य को एक विशेष प्रकार की कृत्रिम गर्भाधान नलिका द्वारा मादा पशु की गर्भाशय ग्रीवा अथवा बच्चेदानी में मद के समय डाल दिया जाता है। इस प्रक्रिया में पहले उन्नत नस्ल के सॉड़ का वीर्य कृत्रिम योनि द्वारा इकठ्ठा किया जाता है जिसके बाद उसकी गुणवत्ता की जॉच की जाती है। जॉच पूरी होने के बाद उत्तम गुणवत्ता वाले वीर्य को एक विशेष प्रकार के द्रव में मिला कर तरल नाइटोजन में संरक्षित किया जाता है। इसके बाद ही इस हिमीकृत वीर्य द्वारा कृत्रिम गर्भाधान किया जाता है।

कृत्रिम गर्भाधान के निम्नलिखित लाभ हैं:

1. कृत्रिम गर्भाधान का उपयोग मुख्य रूप में नस्ल सुधार कार्यक्रम के लिए किया जाता है। प्राक्रतिक गर्भाधान द्वारा एक सॉड़ साल में 50–100 पशुओं को ही गर्भित करने की क्षमता रखता है, जबकि कृत्रिम गर्भाधान द्वारा वह साल में 5000–7000 पशुओं को गर्भित कर सकता है। कृत्रिम गर्भामाान के लिए केवल उच्च गुणवत्ता वाले सॉड़ का ही चयन किया जाता है। इस प्रकार उनम नस्ल के सॉड़ का उपयोग करके कृत्रिम विधि द्वारा उससे हजारों की संख्या में अच्छे नस्ल की संतति ली जा सकती है।

2. यह प्रक्रिया सॉड़ रखने से सस्ती और उत्तम है।

1 पशु चिकित्सा एवं पशु पालन महाविद्यालय, 2 कृषि विज्ञान केन्द्र, सिद्धार्थनगर

3. कृत्रिम गर्भाधान के लिए केवल स्वस्थ सॉड़ों का ही वीर्य इकठ्ठा किया जाता है। इससे वीर्य जनित संक्रामक बीमारियां, गर्भपात इत्यादि अन्य पशुओं में नहीं फैल पाती हैं।

4. उत्तम किन्तु सुस्त अथवा चोटिल सॉड़ भी वीर्य संकलन करके कृत्रिम गर्भाधान के लिए उपयोग में लाये जा सकते हैं।

5. सुदूर स्थित मादा पशु भी इस विधि द्वारा उनम सॉड़ के वीर्य से गाभिन की जा सकती हैं।

6. सॉड़ की प्रजनन शक्ति मरणोपरांत भी अति हिमीकृत वीर्य के रूप में संरक्षित रहती है।

7. पशु के गर्मी में आने पर सॉड़ की खोज के लिए इधर–उधर भटकना नहीं पड़ता है।

8. पशु के गर्मी में होने पर भी कुछ सॉड़ सुस्त होने के कारण पशु पर चढ़ नहीं पाते तथा कुछ सॉड़ पशु के गाभिन होने पर भी उस पर चढ़ जाते हैं। कृत्रिम गर्भाधान द्वारा ऐसी विषम परिस्थितियों से बचा जा सकता है, क्योंकि पशु को पूरी तरह जॉचने के बाद ही कृत्रिम गर्भाधान किया जाता है। इस दौरान जनन संबंधी गड़बड़ियों की पहचान करके उनका जल्द इलाज भी सम्भव है।

कृत्रिम गर्भाधान के लिये पशु का गर्मी में होना आवश्यक है। गर्मी में आने पर पशु में निम्नलिखित लक्षण दिखाती है :

1. पशु का बार–बार रम्भाना।

2. योनिद्वार से लेसदार पतला चमकीला पदार्थ निकलना और लटकना या पूँछ पर चिपका होना।

3. योनि को खोलकर देखने से अंदर की सतह नम व गुलाबी रंगत लिये होना।

4. भगोष्ट सहलाने से पूँछ उपर उठाना।

5. बार–बार पेशाब करना।

6. दूसरे पशुओं को अपने ऊपर चढ़ने देना व कभी – कभी दूसरे पशुओं पर चढ़ना।

7. दूध उत्पादन अस्थाई रूप से अचानक कम होना।

भैंस अक्सर देर शाम से सुबह सवेरे तक लगभग 12–18 घंटे गर्मी में रहती है। गर्भित न होने पर वह हर 19–23 दिन बाद गर्मी में आती रहती है। भैंस में गर्मी के लक्षणों की तीव्रता गाय की अपेक्षा कम होती है। इसलिए ये सभी लक्षण अधिकांश भैंसों में प्रकट नहीं होते। ज्यादातर भैंसों में गर्मी के लक्षणों का आधार बार–बार रम्भाना या योनि मार्ग से रस्सी की भाँति लटकती हुई तार गिरना माना जाता है। लेकिन गर्मी का कोई भी एक लक्षण भैंस में दिखाई दे तो जल्द से जल्द उसकी जाँच करवा कर वीर्य का टीका लगवा देना चाहिए। उदाहरण के लिए अगर भैंस केवल तार ही दे रही है या केवल रम्भा रही है ओर डोका कर रही है तो जाँच करवाना जरूरी है। किसान भाई आमतौर पर भैंस के रम्भाने के इन्तजार में अन्य लक्षणों को नजरअंदाज कर जाते हैं और इस तरह देर होने से गर्मी तथा गर्भाधान का समय निकल जाता है। भैंस में गर्मी के लक्षणों के दौरान कभी भी गर्भाधान कराया जा सकता है परन्तु वैज्ञानिक सलाह यह दी जाती है कि सुबह गर्मी में आई भैंस को शाम के समय तथा शाम को गर्मी में आई भैंस को अगले दिन सुबह कृत्रिम गर्भाधान कराया जाये। 12 घंटे के अंतराल पर दो बार कृत्रिम गर्भाधान से भैंस के गाभिन होने की संभावना बढ़ जाती है।

कृत्रिम गर्भाधान के लिये जरूरी सावधानियाँ

• कृत्रिम गर्भाधान से गर्भधारण दर अधिक हो इसके लिए निम्नलिखित बातों पर अमल जरूर करें:

• गर्भाधान उच्च गुणवना वाले वीर्य से उचित समय पर व उचित तकनीक द्वारा करायें।

• अतिहिमीकृत वीर्य की स्ट्रां को तरल नाइटोजन से निकालकर आधे से एक मिनट के लिए गुनगुने 370 डिग्री पानी में अवश्य डाला गया हो।

• कृत्रिम गर्भाधान से पहले भैंस की योनि का बाहरी भाग अच्छी तरह साफ कर लें।

• कृत्रिम गर्भाधान से पहले तथा बाद में पशु के साथ नरमी बरतें। उसकी पिटाई न करें तथा दौड़ायें नहीं।

• पशु को गर्म वातावरण में न रखें।

• टीका लगवाने के लगभग 19–23वें दिन के दौरान भैंस पर अधिक नजर रखें कि भैंस गाभिन न होने के कारण दोबारा गर्मी में तो नहीं है।

• पशु को संतुलित आहार खिलायें। आहार में 40–50 ग्राम खनिज लवण मिश्रण जरूर मिलायें।

• वीर्य का टीका लगवाने के दो महीने बाद पशु चिकित्सक से भैंस के गर्भ ठहरने की जाँच करवायें।

• भैंस को गाभिन कराने के लिए किसान भाई ज्यादातर प्राकृतिक विधि द्वारा गर्भाधान कराते हैं। एक अनुमान के अनुसार कृत्रिम गर्भाधान केवल 100: भैंसों में जबकि प्राकृतिक गर्भाधान 90: भैंसों में इस्तेमाल होता है। अतः यह आवश्यक है कि प्रजनन के लिए सही झोटे का चयन करें ताकि अच्छी संतति प्राप्त हो।

जनन के लिये झोटे का चयन करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें:

• सॉड़ किसी अच्छे प्रजनन फार्म से खरीदें जहाँ पर माँ के दूध का रिकार्ड रखा जाता हो। सॉड़ को किसी अनजान स्रोत से बिल्कुल न खरीदें।

• सॉड़ की माँ के एक ब्यांत का दूध रिकार्ड कम से कम 2500 कि0ग्रा0 अवश्य होना चाहिए।

• सॉड़ में उसकी नस्ल के सभी गुण मौजूद होने चाहिए।

• सॉड़ के पावों में चोट न लगी हो तथा चलने में शान हो। पावों का मज़बूत होना अति आवश्यक है।

• सॉड़ का स्वास्थ्य अच्छा हो तथा सॉड किसी संक्रामक रोग से पीड़ित न हो।

• सॉड़ के दोनों वृषण हों जो समान आकार के हों, आपस में चिपके हुए न हों तथा उनमें कोई सूजन न हो। वृषण का आकार जितना बड़ा होगा, सॉड़ की जनन क्षमता उतनी ही अधिक होगी व इसकी संतति की जनन क्षमता भी अधिक होगी।

• सॉड़ का लिंग प्राकृतिक गर्भाधान कराते समय पूरा निकलना चाहिये तथा भैंस को गाभिन करने में वह पूर्ण समर्थ हो।

• ऐसे सॉड़ का इस्तेमाल न करें जिसकी माँ को कोई आनुवंशिक रोग/ बीमारी हो या माँ फूल दिखाती हो, लम्बे अन्तराल में बच्चा देती हो, अथवा उसे बार–बार थनैला रोग होता हो।

• ऐसे सॉड़ को न खरीदें जिसकी मैथुन इच्छा में कमी हो। झोटे की देखभाल प्राकृतिक गर्भाधान के लिए इस्तेमाल किये जाने वाले सॉड़ को विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है।

सॉड़ की देखभाल के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए:

• सॉड़ का बाड़ा आरामदायक व बड़ा हो जहाँ से वह अन्य पशुओं को आसानी से देख सके।

• बाड़ा ऐसा हो जो उसे अधिक गर्मी और सर्दी से सुरक्षित रख सके।

• खूंखार सॉड़ से किसान की सुरक्षा का इंतजाम बाड़े में अवश्य रखें।

• प्राकृतिक गर्भाधान का स्थान बाड़े से दूर होना चाहिए।

• प्राकृतिक गर्भाधान के लिये सॉड़ की उम्र कम से कम अढ़ाई साल तथा वजन 350 कि0 ग्रा0 होना चाहिए।

• कम उम्र के साँड को सप्ताह में दो या तीन बार ही इस्तेमाल करना चाहिए।

• भैंस पर सॉड़ केवल एक बार ही कुदाना चाहिए। दो या तीन बार सॉड़ को कुदाने की न ही कोई आवश्यकता है और न ही कोई लाभ।

• एक भैंस को गाभिन करने के बाद झोटे को एक दिन का अंतर देकर अगली भैंस पर कुदाना चाहिए।

झोटे को कुदाते वक्त यदि भैंस की योनि पर गोबर लगा हो तो उसे पानी से या साफ कपड़े से अच्छी तरह साफ करना चाहिए।

झोटे को संगम कराने से पहले उसे मैथुन के लिए

उनेजित करना आवश्यक होता है। इसके लिऐ झोटे को दो–तीन बार भैंस के ।पर कुदाऐं और तुरंत हटा लें, ताकि संगम न हो सके। इसके बाद ही झोटे और भैंस का वास्तविक मिलन करायें। यदि झोटा सुस्त है तो भैंस दिखाने के बाद उसे दूर ले जायें। थोड़ा घुमाने के बाद उसे भैंस पर कुदायें। भैंस के पास कोई दूसरा सॉड़ बांधने से भी सॉड़ को उनेजना मिलती है।

भैंस पर कुदाते समय झोटे के साथ नम्र व्यवहार करना चाहिए तथा मारपीट नहीं करनी चाहिए।

सॉड़ को प्रतिदिन कम से कम एक घंटा व्यायाम करवायें।

सॉड़ को रोज़ खुरेरा करें तथा रोज नहलायें।

हर छः महीने के बाद उसके खून की जा!च ब्रुसेलोसिस रोग तथा अन्य यौन रोगों के लिए करा लें।

समय समय पर बीमारी रोधक टीके लगवायें।

समय पर संतुलित आहार दें। हर तीन–चार साल बाद गाव में सॉड़ को बदल दें। क्योंकि तीन–चार साल में इस सॉड़ की सन्तान/संतति यौवनावस्था प्राप्त कर लेती हैं तथा इस प्रकार यदि उनका मिलन अपने ही पिता से कराया जाए तो आनुवंशिक रोग होने की सम्भावना बढ़ जाती है और दुग्ध उत्पादन घटने लगता है

पोषक तत्वों का पशु प्रजनन क्षमता पर प्रभाव

डा0 एस.एन.लाल' एवं डा0 सुरेन्द्र सिंह''

पशु आहार में पाये जाने वाले पोषक तत्व

रासायनिक संरचना के अनुसार कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज लवण प्शु आहार के प्रमुख तत्व हैं। डेयरी पशु शाकाहारी होते हैं अतः ये सभी तत्व उन्हें पेड़ पौधों से, हरे चारे या सूखे चारे अथवा दाने से प्राप्त होते हैं।

कार्बोहाइड्रेट – कार्बोहाइड्रेट मुख्यतः शरीर को ऊर्जा प्रदान करते हैं। इसकी मात्रा पशुओं के चारे में सबसे अधिक होती है । यह हरा चारा, भूसा, कड़वी तथा सभी अनाजों से प्राप्त होते हैं।

प्रोटीन – प्रोटीन शरीर की संरचना का एक प्रमुख तत्व है। यह प्रत्येक कोशिका की दीवारों तथा आंतरिक संरचना का प्रमुख अवयव है। शरीर की वृद्धि, गर्भस्थ शिशु की वृद्धि तथा दूध उत्पादन के लिए प्रोटीन आवश्यक होती है। कोशिकाओं की टूट–फूट की मरम्मत के लिए भी प्रोटीन बहुत जरूरी होती है। पशु को प्रोटीन मुख्य रूप से खल, दालों तथा फलीदार चारे जैसे बरसीम, रिजका, लोबिया, ग्वार आदि से प्राप्त होती है।

वसा –पानी में न घुलने वाले चिकने पदार्थ जैसे घी, तेल इत्यादि वसा कहलाते हैं। कोशिकाओं की संरचना के लिए वसा एक आवश्यक तत्व है। यह त्वचा के नीचे या अन्य स्थानों पर जमा होकर, ऊर्जा के भंडार के रूप में काम आती है एवम् भोजन की कमी के दौरान उपयोग में आती है। पशु के आहार में लगभग 3–5 प्रतिशत वसा की आवश्यकता होती है जो उसे आसानी से चारे और दाने से प्राप्त हो जाती है। अतः इसे अलग से देने की आवश्यकता नहीं होती। वसा के मुख्य स्रोत – बिनौला, तिलहन, सोयाबीन व विभिन्न प्रकार की खलें हैं।

विटामिन –शरीर की सामान्य क्रियाशीलता के लिए पशु को विभिन्न विटामिनों की आवश्यकता होती है। ये विटामिन उसे आमतौर पर हरे चारे से पर्याप्त मात्राा में उपलब्ध हो जाते हैं। विटामिन 'बी' तो पशु के पेट में उपस्थित सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा पर्याप्त मात्रा में संश्लेषित होता है। अन्य विटामिन जैसे ए, सी, डी, ई तथा के, पशुओं को चारे और दाने द्वारा मिल जाते हैं। विटामिन ए की कमी से भैंसो में गर्भपात, अंधापन, चमड़ी का सूखापन, भूख की कमी, गर्मी में न आना तथा गर्भ का न रूकना आदि समस्यायें हो जाती हैं।

खनिज लवण– खनिज लवण मुख्यतः हड्डियों तथा दांतों की रचना के मुख्य भाग हैं तथा दूध में भी काफी मात्राा में स्रावित होते हैं। ये शरीर के एन्जाइम और विटामिनों के निर्माण में काम आकर शरीर की कई महत्वपूर्ण क्रियाओं को निष्पादित करते हैं। इनकी कमी से शरीर में कई प्रकार की बीमारियाँ हो जाती हैं। कैल्शियम, फॉस्फोरस, पोटैशियम, सोडियम, क्लोरीन, गंधक, मैग्निशियम, मैंगनीज, लोहा, तांबा, जस्ता, कोबाल्ट, आयोडीन, सेलेनियम इत्यादि शरीर के लिए आवश्यक प्रमुख लवण हैं। दूध उत्पादन की अवस्था में भैंस को कैल्शियम तथा फास्फोरस की अधिक आवश्यकता होती है। प्रसूति काल में इसकी कमी से दुग्ध ज्वर हो जाता है तथा बाद की अवस्थाओं में दूध उत्पादन घट जाता है एवम् प्रजनन दर में भी कमी आती है। कैल्शियम की कमी के कारण गाभिन भैंसें फूल दिखाती हैं। क्योंकि चारे में उपस्थित खनिज लवण भैंस की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते, इसलिए खनिज लवणों को अलग से खिलाना आवश्यक है।

पशुओं में पोषक तत्वों की कमी से प्रजनन क्षमता अनेक प्रकार की समस्या उत्पन्न करती है जैसे पशु का समय पर गर्म न होना, गर्भ ना ठहरना, मदचक्र अनियमित होना तथा भ्रूण की मृत्यु होना।

आवश्यकता से कम पोषक तत्व की उपलब्धता

यदि पशु को अधिक समय तक आवश्यकता के अनुरूप पोषक तत्व आहार में नहीं दिया जा रहा है तो

' प्राध्यापक (पशु विज्ञान) प्रसार निदेशालय '' सहप्राध्यापक (पशु विज्ञान) कृषि विज्ञान केन्द्र, बाराबंकी

निम्न प्रकार के लक्षण उत्पन्न होते हैं :–

- वयस्क होने में देरी।
- मदचक्र का अनियमित होना।
- अंडाशय में अंडाणुओं की बढ़वार कम होना तथा और असमय अण्डाक्षरण होना।
- आवश्यक हार्मोन की कमी होना।
- ब्याने की पश्चात समुचित राशन न मिलने पर पुनः गर्भधारण न करना।

आवश्यकता से अधिक पोषक तत्व की उपलब्धता

आवश्यकता से अधिक पोषक तत्व पशुओं को खिलाने पर शरीर तथा जननांगों में अधिक चर्बी इकट्ठा हो जाती है, जिससे निम्न प्रकार की समस्या उत्पन्न हो जाती हैं :–

- अंडाशय के चारों ओर वसा का जमा होना तथा मदचक्र का रुकना।
- बार–बार गर्भित कराने पर भी गर्भ ना ठहरना।
- अंडाणुओं की गतिशीलता प्रभावित होती है।
- प्रसव कष्टमय हो जाता है।

मुख्य रूप से प्रोटीन, विटामिंस व खनिज लवण पोषक तत्व प्रजनन क्षमता को प्रभावित करते हैं।

आहार में प्रोटीन की कमी

पशु आहार में प्रोटीन की मात्रा व गुणवत्ता दोनों ही प्रजनन के लिए आवश्यक है।

प्रोटीन की कमी से अन्य पोषक तत्वों की उपलब्धता भी प्रभावित होती है साथ ही साथ अंतः स्रावी ग्रंथियों का स्राव भी प्रभावित होता है जिससे मध्यचक्रअनियमित हो जाता है।

आहार में विटामिन की कमी

विटामिन ए की कमी से गर्भकाल के शुरूआत में गर्भपात हो जाता है तथा बच्चा मृत या कमजोर पैदा होता है। गर्भावस्था में शिशु की श्लेष्मा छील्लीयॅा खुरदुरी हो जाती ह जिससे जेर रुकने की संभावना बढ़ जाती है। विटामिन बी कांपलेक्स, विटामिन सी एवं डी कि सामान्यतया पशुओं में कोई कमी नहीं पाई जाती है। पशुओं में विटामिन ई की कमी का प्रजनन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पाया जाता है।

खनिज लवणकी कमी

पशुओं के आहार में खनिज लवणों का अति महत्वपूर्ण स्थान है। शरीर में इनकी कमी से कई प्रकार के रोग एवं समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। इनकी कमी पशुओं का प्रजनन तंत्र भी प्रभावित होता है जिससे पशुओं में प्रजनन संबंधित विकार पैदा हो जाते हैं। जैसे पशुओं का बार–बार मद में आना, अधिक आयु हो जाने के बाद भी मद में नहीं आना तथा मद में आने के बाद में भी बच्चे का न रुकना इत्यादि। इन विकारों के लिए कई कारण उत्तरदायी हैं, जिसमें एक खनिज लवण भी है।

खनिज लवणों के विस्तृत जानकारी से पहले यह जानना आवश्यक है कि खनिज लवण क्या है? किसी भी वस्तु के जलने पर जो राख बचती है उसे भस्म या खनिज कहते हैं यह बहुत ही थोड़ी मात्रा में प्रत्येक प्रकार के चारे दाने तथा शरीर के प्रायः सभी अंगों में पाई जाती हैं। प्रकृति में लगभग 40 प्रकार के खनिज जीव जंतुओं के शरीर में पाए जाते हैं लेकिन इसमें से कुछ ही अत्यंत उपयोगी हैं जिन की आवश्यकता पशुओं के आहार में होती है। शरीर की आवश्यकता अनुसार खनिजों को दो भागों में विभाजित किया गया है। एक तो वे खनिज जो अधिक मात्रा में पशु के लिए आवश्यक है, जिनकी मात्रा को ग्राम या प्रतिशत में व्यक्त करते हैं इनको प्रमुख खनिज कहते हैं जैसे– कैल्शियम, फास्फोरस, पोटैशियम, सोडियम, सल्फर, मैग्नीशियम, तथा क्लोरीन। दूसरे वे खनिज जो शरीर हेतु बहुत सूक्ष्म मात्रा में आवश्यक होते हैं, जिसको पी0पी0एम में व्यक्त करते हैं, ऐसे खनिज को सूक्ष्म या फिर बिरल खनिज कहते हैं जैसे लोहा, जिंक, कोबाल्ट, कॉपर, आयोडीन, मैग्नीज, मोलीटडेनम, क्रोमियम, फलोरीन, सेलेनियम, निकिल, सिलिकान, टिन एवं वेनाडियम।

इस प्रकार से कैल्शियम, फास्फोरस, पोटैशियम, सोडियम, सल्फर, मैग्नीशियम, क्लोरीन, लोहा, तॉबा, कोबाल्ट, मैगनीज, जिंक तथा आयोडीन आदि पशुओं

के लिए अति आवश्यक खनिज लवण है। जो जीवन एवं स्वास्थ्य रक्षा हेतु आवश्यक है। शरीर में खनिज लवणों के सामान्य कार्य में कैल्शियम व फास्फोरस दांत एवं हड्डियों के बनाने मैं आवश्यक होते हैं। दुधारू गायों के रक्त में कैल्शियम की कमी से दुग्ध ज्वर हो जाता है। सोडियम, पोटैशियम एवं क्लोरीन शरीर के द्रवों में परिसारक दाब को ठीक बनाए रखते हैं तथा उनमें अन्य गुणों का संतुलन स्थापित करते हैं। रक्त में पोटैशियम तथा सोडियम का समुचित अनुपात हृदय की गति तथा अन्य चिकनी मांस पेशियों को उत्तेजित करने एवं उनमें संकुचन की क्रिया संपन्न करने के लिए आवश्यक होते हैं। लोहा लवड़ लाल रक्त कणों में हीमोग्लोबिन बनाने में आवश्यक होता है। जिसके कारण रक्त में ऑक्सीजन लेने की शक्ति पैदा होती है। अन्य खनिज लवण या तो शरीर के कुछ आवश्यक भाग बनाते हैं या एंजाइम पद्धति के लिए आवश्यक तत्व बनाते हैं।

खनिज लवण का प्रजनन पर प्रभाव

पशुओं के प्रजनन क्षमता को प्रभावित करने वाले खनिज लवणों में मुख्यतः कैल्शियम, फासफोरस, लोहा, तॉबा, कोबाल्ट, मैगनीज, आयोडीन एवं जिंक हैं। इन तत्वों की कमी से पशुओं में मदहीनता अथवा बार–बार मद में आना एवं गर्भधारण ना करने की समस्या आती है। आहार में कैल्शियम की कमी के कारण अंडाणु में निषेचन मुश्किल से होता है तथा गर्भाशय पीला होकर निष्क्रिय हो जाता है। पशुओं के आहार में फास्फोरस की कमी से पशुओं में अंडा उत्पादन, शुक्राणु उत्पादन, निषेचन, भ्रूण के विकास एवं बच्चा पैदा होने की क्रिया प्रभावित होती है।

पोषक तत्व की कमी को दूर करने के उपाय

पशुपालक भाइयों को चाहिए कि इस तरह की समस्याओं को दूर रखने के लिए पशुओं को संतुलित आहार दें अर्थात पशुओं के दाने चारे में शर्करा या कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज लवण तथा विटामिंस का संतुलित मात्रा में होना नितांत आवश्यक है। पशु के आहार में सूखे चारे तथा हरे चारे का समावेश अवश्य होना चाहिए। केवल हरा चारा, सूखा चारा अकेले नहीं देना चाहिए, कम से कम दो तिहाईसूखा चारा तथा एक तिहाई हरा चारा होना आवश्यक है। दाना अकेले एक प्रकार का नहीं देना चाहिए बल्कि इनका मिश्रण तैयार करके पशु को खिलाना चाहिए। एक कुन्तल दाना मिश्रण तैयार करने हेतु 20 से 30 किग्रा. खली, 40 किग्रा. चोकर, 15–25किग्रा. दलहनी फसलों के उत्पाद 15 से 25 किग्रा. अद लहनी फसलों के उत्पाद, 2 किग्रा. खनिज लवण एवं एक किग्रा. नमक भली–भांति मिश्रित कर लेना चाहिए। प्रौढ़ पशुओं को निर्वाह हेतु इस मिश्रित दाने को एक किग्रा. मात्रा एवं प्रजनन व गर्भ हेतु 1–1. 5 किलोग्राम 2.5–3.0 लीटर दूध उत्पादन पर एक किलोग्राम दाना मिश्रण निर्वाह आहार के अतिरिक्त देना चाहिए। इस प्रकार आहार से पशुओं में खनिज लवण की पूर्ति अधिकांश हो जाती है। फिर भी इनमें कुछ सूक्ष्म खनिज लवण की कमी हो सकती है जिसके लिए खनिज मिश्रण का पाउडर जो बाजार में विभिन्न व्यापारिक नाम से उपलब्ध है 30 से 40 ग्राम मात्रा प्रतिदिन प्रति पशु देना चाहिए।

इस प्रकार पशुओं को चारे दाने के अनुपात में आवश्यक मात्रा के अनुसार पशुओं को खिलाने एवं पशु प्रजनन संबंधी समस्याएं दूर हो सकती हैं। साथ ही साथ सही समय पर गर्भधारण के उपरांत अच्छी बछिया/ पंड्या से किसान अधिक धन अर्जित कर सकते हैं।

इसलिये किसान भाइयों को चाहिये कि अपने पशुओं संतुलित प्शु आहार खिलायें जिस आहार में आवश्यक पोषक तत्व उचित अनुपात व सही मात्रा में उपलब्ध हो। जिससे पशुओं की प्रतिदिन की आवश्यकता की पूर्ति होती रहे एवं पोषक तत्वों की कमी से प्रजनन क्षमता प्रभावित न होने पाये।

उन्नत मुर्गी पालन प्रबंध से आय में वृद्धि संभव

डा0 सुरेन्द्र सिंह', डा0 एस0एन0लाल' ' एवं डा0 आर0के0 आनन्द'''

मुर्गी पालन पौश्टिक तथा आर्थिक दृश्टिकोण से एक लाभदायक कार्य है इसे गांव से लेकर शहरी क्षेत्रों के आस–पास के इलाकों में व्यवसायिक रूप में अपनाकर आमदनी में वृद्धि की जा सकती है। मुर्गियों का पालन अंडा एवं मांस प्राप्त करने के लिए किया जाता है जिससे शरीर के लिए आवश्यक पोशक तत्वों की प्राप्ति होती है और लोग उसका उपयोग करके कुपोशण से होने वाली समस्या से निजात पा सकते हैं।

हमारे देश में मुर्गी पालन व्यवसाय की प्रगति अत्यन्त तीव्रता से हुई है परन्तु इस कार्य में पूंजी लगाने से पहले तकनीकी जानकारी होना आवश्यक है जिससे उचित प्रबंधन करके अधिक लाभ प्राप्त किया जा सके क्योकि थोड़ी सी असावधानी या समुचित ज्ञान के अभाव में मुर्गियों की वृद्धि दर, स्वाास्थ्य उत्पादन आदि प्रभावित हो सकता है या कभी–कभी फार्म के अंदर का अनुकूल वातावरण न होने पर चूजे/मुर्गियां मरने लगती हैं। इस कार्य को शुरूआत में छोटे स्तर से करके अनुभव के आधार पर धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिए। उचित रख रखाव या प्रंबंधन मुर्गी पालन व्यवसाय के सफल होने में अहम भूमिका निभाता है। अतः प्रबंध संबंधी जानकारी का होना बहुत जरूरी है।

मुर्गी फार्म की स्थापनाः

मुर्गी फार्म के लिए निम्न लिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिएः–

1. फार्म का स्थानः मुर्गीपालन में फार्म हेतु स्थान का चयन अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। स्थान का चयन करते वक्त इस बात का विशेश ध्यान देना चाहिए कि यह जल भराव या निचले स्थान पर न हो क्योंकि इस प्रकार की जगहों पर सीलन एवं नमी हमेशा बनी रहती है। अतः ऐसे स्थान पर फार्म बनाया जाय जहां बाढ़ या जल भराव की समस्या न हो तथा जमीन की सतह ऊंची हो जिसमें जलनिकास नालियों के माध्यम से पानी की निकासी का समुचित प्रबंध किया जा सके।

2. मुख्य सड़क से फार्म की दूरीः मुर्गी फार्म में चूजों, मुर्गी आहार (दाना), अण्डों, ब्रायलरों आदि का आना जाना (आवागमन) हमेशा लगा रहता है। इसलिए फार्म से मुख्य सड़क तक आवागमन के लिए सड़क का जुड़ाव होना अति आवश्यक है जिससे मुर्गी दाना, मुर्गी उत्पाद जैसे अण्डा व ब्रायलर आदि लाने, ले जाने का कार्य सुगमता से हो सके।

3. बाजार तथा आहार की सुगमताः मुर्गी फार्म से बाजार की दूरी जितनी अधिक होगी मुर्गी आहार, अण्डों तथा ब्रायलरों के आने जाने का व्यय उतना ही अधिक होगा। इसलिए मुर्गी फार्म खोलने के समय इसका ध्यान रखना चाहिए।

4. जलापूर्तिः मुर्गियों के अच्छे स्वास्थ्य, वृद्धि तथा उत्पादन के लिए स्वच्छ व पर्याप्त मात्रा में सदैव पानी की उपलब्धता होनी चाहिए। मुर्गियां अधिक पानी पीती है। एक हजार मुर्गियों को लगभग 300–400 लीटर पानी की आवश्यकता पड़ती है। अच्छी गुणवत्ता वाला पानी जहां पर आसानी से उपलब्ध हो ऐसे स्थान पर ही फार्म बनाया जाय क्योंकि कभी–कभी किसी स्थान का भूमिगत जल पीने योग्य नही होता है। इसलिए फार्म बनाने से पहले प्रयोगशाला से पानी की जांच अवश्य कराना चाहिए। पानी में हानिकारक लवण/ तत्व की अधिकता होने पर मुर्गियों का स्वास्थ्य प्रभावित हो सकता है जिससे मुर्गीपालक को नुकसान उठाना पड़ सकता है।

5. विद्युत प्रबंधः मुर्गीफार्म पर विद्युत की व्यवस्था अति आवश्यक है। चूजे पालने, पानी निकालने के लिए पम्प चलाने आदि में विद्युत शक्ति की जरूरत पड़ती है। विद्युत के अन्य स्रोतो जनरेटर/इन्वर्टर भी फार्म सफलतापूर्वक चलाया जा सकता है परन्तु बिजली का प्रबंध किया जाना चाहिए।

6. अन्य फार्मों से दूरीः सफल मुर्गीपालन के लिए जहां तक संभव हो ऐसे स्थान पर मुर्गी घर बनाना चाहिए जो दूसरे फार्मों से दूर हो जिससे बीमारी के प्रकोप से बचा जा सके एवं अन्य फार्मो का पानी फार्म पर ना आ सके।

नस्ल का चुनावः मुर्गीपालन दो उद्देश्यों के लिए किया जाता है पहला अण्डा उत्पादन हेतु लेयर पालन तथा दूसरा मांस उत्पादन के लिए ब्रायलर पालन।

'विशय वस्तु विशेशज्ञ (पशु विज्ञान), के0वी0के0, कठौरा, अमेठी, '' विशय वस्तु विशेशज्ञ (पशु विज्ञान), प्रसार निदेशालय, आ0नरेन्द्र देव कृशि एवं प्रौ0वि0वि0, कुमारगंज, अयोध्या, ''' वरिश्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, के0वी0के0, कठौरा अमेठी,

1. अण्डा उत्पादक मुर्गियांः अंडा देने वाली नस्ल की वे मुर्गियां होती हैं जो मुर्गी दाने को अण्डो में परिवर्तित करने की क्षमता रखती है परन्तु उनमें मांस की बढ़ोत्तरी अधिक नही होती है। ये शारीरिक रूप से हल्की होती है, दाना कम खाकर अधिक अंडो का उत्पादन करती है एवं कुड़क नही होती है। व्हाइट लेग हार्न मुर्गी की नस्ल इसके लिए सर्वोत्तम है। ये बहुत अच्छी सहनशील नस्ल होती है तथा इन्हे पालना आसान होता है। इनसे वर्श में लगभग 300–310 तक अंडे की प्राप्ति होती है।

2. मांस वाली नस्ल की मुर्गियांः इस श्रेणी में ऐसी नस्ल आती है जो मुर्गी दाने को मांस के रूप में शीघ्रता से परिवर्तित कर देती है। इनके शरीर का वजन काफी अधिक होता है, ये मुख्यतः व्हाइट राक, व्हाइट कार्निस नस्ले प्रमुख हैं। ये नस्लें तथा इनके क्रास मांस वाले चूजों के लिए उपयुक्त होते हैं।

3. द्विउद्देशीय मुर्गी की नस्लः इस प्रकार की नस्ल वाली मुर्गियों से अण्डा तथा मांस प्राप्त होता है। इनका पालन अब कम किया जाता है। रोड आइलैंड रेड (आर. आई.आर) एवं आस्ट्रोलार्प इस वर्ग की नस्लें हैं। इनसे लगभग 200 से 250 अंडे प्रति वर्श प्राप्त होते हैं।

मुर्गी पालन चाहे जिस उद्देश्य के लिए किया जाय लेकिन चूजों को हमेशा ऐसी विश्वस्त हैचरी से लाए जाये जिनके समूह किफायती प्रबल तथा बीमारियों से मुक्त हो।

आहार प्रबंधः समुचित उत्पादन प्राप्त करने के लिए संतुलित आहार का प्रबंध नितांत आवश्यक है। मुर्गीपालन पर किये गये कुल खर्च का लगभग 65–70 प्रतिशत भाग उनके आहार व्यवस्था पर खर्च हो जाता है। संतुलित आहार व आहार है जिसमें वे सभी पोशक तत्व उचित मात्रा में उपलब्ध हो जो कि शरीर के सर्वांगीण विकास प्रजनन तथा उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए आवश्यक है और साथ ही साथ शरीर को स्वस्थ एवं रोग मुक्त रखने में भी सहायक होते हैं। इनके अन्तर्गत कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, फैट या वसा, विटामिन्स, खनिज पदार्थ तथा पानी आते हैं। मुर्गियों की विभिन्न श्रेणी व आयु की अवस्थाओं में उनकी शारीरिक क्रियाओं (विकास, उत्पादन, प्रजनन एवं स्वास्थ्य निर्वाह) की भिन्नतानुसार पौश्टिक तत्वों की आवश्यकताएं भिन्न होती है। इस कारण से मुर्गियों की विभिन्न अवस्थाओं में निम्नलिखित प्रकार से आहार देना अत्यन्त जरूरी है–

अण्डे देने वाली मुर्गियों (लेयर) का आहार (फीड)

क. 0 से 8 सप्ताह तक चिक फीड।

ख. 8 से 20 सप्ताह तक ग्रोवर फीड।

ग. 21 सप्ताह से ऊपर लेयर फीड।

मांस वाली मुर्गियों का (ब्रायलर) आहार (फीड)

क. 0 से 10 दिन तक प्रीस्टार्टर।

ख. 11 से 24 दिन तक स्टार्टर।

ग. 25 दिन से बिक्री तक फिनीशरआहार

सभी मुर्गियों को हमेशा स्वच्छ ताजा पानी उपलब्ध करना चाहिए।

मुर्गियों का स्वास्थ्य प्रबंधः मुर्गियों की मृत्यु दर घटाने तथा घरों को बीमारियों से मुक्त करने के लिए निम्न सावधानी अपनानी चाहिए'–

1. चूजे विश्वसनीय हैचरी से खरीदें जाये जोकि बीमारियों से मुक्त हों।

2. बिछावन सामग्री साफ, सूखा और मुलायम होना चाहिए।

3. सही तरह से समय–समय पर बिछावन को उलट–पुलट करना, चूना मिलाना तथा मुर्गियों की बीट आदि को साफ करते रहने से मुर्गियों में होने वाली बीमारियों को काफी हद तक रोका जा सकता है।

4. पर्याप्त हवा का आवागमन तथा सूर्य के प्रकाश का प्रबंध होना चाहिए।

5. मुर्गियों के लिए पर्याप्त स्थान हो। अधिक भीड़, सर्दी व अधिक गर्मी से बचाव अत्यन्त आवश्यक है।

6. चूजे/मुर्गियां पूरे आवास में समान रूप से बिखरे होने चाहिए।

7. बीमार मुर्गियों को समूह से अलग कर देना उचित रहता है।

8. बीमारी से बचाव के लिए टीकाकरण आवश्यक है।

9. मुर्गियों के स्वास्थ्य की जांच पक्षी रोग विशेशज्ञ/पशु चिकित्सक से करानी चाहिए।

10. मुर्गियों को समय–समय पर कीड़े की दवा, विटामिन, एन्टीबायोटिक आदि देना चाहिए।

11. मुर्गी फार्म में जैव सुरक्षा के प्रबंध को नियमित रूप से लागू करना चाहिए। जिससे रोग पैदा करने वाले तत्वों के प्रवेश पर रोक लग सके।

उपरोक्त प्रबंकीय बिन्दुओं को ध्यान में रखकर मुर्गीपालक भाई इस व्यवसाय से अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं।

दिसम्बर माह में किसान भाई क्या करें

फसलों में

डॉ. सौरभ वर्मा
सह प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)

(1) समय से बोये गये गेहूँ में पहली सिंचाई ताजमूल अवस्था में 20–25 दिन पर करें।

(2) गेहूँ में चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार के नियंत्रण के लिए 675 ग्राम 2,4 डी सोडियम सॉल्ट 80 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण तथा गेहूँसा के लिए 75 प्रतिशत आइसोप्रोट्यूरान 1.50 किग्रा को 600 से 800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर चपटे नॉजिल वाले स्प्रेयर से बुवाई के 30–35 दिन पर छिड़काव करें।

(3) चना, मटर तथा मसूर में 45–60 दिन पर सिंचाई करें।

(4) लाही में दाना पड़ने पर तथा राई में फूल आने की अवस्था पर सिंचाई करें।

सब्जी एवं उद्यान में

डॉ. शशांक सिंह
विषय वस्तु विशेषज्ञ, उद्यान

(1) नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में हल्की सिंचाई के बाद फूलगोभी एवं पातगोभी में नत्रजन की आधी मात्रा डालकर मिट्टी चढ़ा दें।

(2) नवम्बर के प्रथम पखवारे में जो आलू बोये गये हैं उसमें माह के प्रथम पक्ष मे हल्की सिंचाई करके नत्रजन की आधी मात्रा देकर मिट्टी चढ़ा दें।

(3) नवम्बर में डाली गयी पूसा रेड या नासिक रेड प्याज की पौध की रोपाई माह के दूसरे पक्ष में 15 गुणा 10 सेमी की दूरी पर 20 टन सड़ी गोबर की खाद तथा 50:50:80 ना.फा.पो. प्रति हेक्टेयर डालकर करें।

(4) नये बागों में थालों की निराई–गुड़ाई करके उचित नमी बनाये रखने के लिए 10–15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करते रहें। पाला से बचाने के लिए घास–फूस की ठठरी बनाकर तीन तरफ से ढक दें।

(5) अंगूर की बाग लगाने के लिए पंक्ति से पंक्ति तथा पौधे से पौधे की दूरी 2–3 मीटर रखकर 60 गुणा 60 गुणा 60 सेमी आकार के गड्ढे खोद लें। गड्ढों को 15–20 दिन खुला छोड़ने के बाद खाद तथा मिट्टी को समान मात्रा में 50–100 ग्राम बीएचसी तथा 0.5 से 1 किग्रा सुपरफास्फेट डालकर सिंचाई करें

पौध संरक्षण

डॉ. वी. पी. चौधरी एवं डॉ. पंकज कुमार
सहायक प्राध्यापक (पादप रोग)

(1) तिलहन में झुलसा एवं सफेद गेरुई रोग के नियंत्रण के लिये जिंक कार्बामेट की 2 किग्रा मात्रा 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

(2) आलू तथा टमाटर में पिछेती झुलसा रोग के नियंत्रण के लिए मैंकोजेब 2.5 किग्रा मात्रा को 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

(3) आम एवं कटहल के पौधों में मिलीबग के नियंत्रण के लिए तने की एक मीटर ऊँचाई तक 30 सेमी चौड़ी तथा 400 गेज मोटी पॉलीथीन की पट्टी बाँधकर किनारे पर मिट्टी या ग्रीस से चिपका दें।

पशुपालन

डॉ. एस.एन. लाल
सह प्राध्यापक (पशु विज्ञान)

(1) सर्दी का मौसम भैंस के लिए गर्भाधान हेतु उत्तम होता है। अतः मादा भैंसों में गर्भाधान हेतु उत्तम नस्ल के नर भैंसों का प्रयोग करें।

(2) प्रत्येक पशुपालक को दुधारू पशुओं तथा उनकी संतति के उत्तम रख–रखाव हेतु खिड़कियों एवं दरवाजों पर टाट अथवा बोरे के पर्दे लगाना चाहिए तथा बाँधने वाले स्थान पर पुआल का बिछावन प्रयोग करें।

(3) भेड़ों और बकरियों में प्रसूति काल चल रहा है इस पर विशेष ध्यान रखा जाये।

(4) भैसों में इस समय दूध उत्पादन का सर्वोत्तम काल चल रहा है। अतः इस समय थनैला रोग लगने की संभावना रहती है। अतः उनके थन को हमेशा स्वच्छ रखें तथा चोट आदि से बचाव किया जाय तथा उनका दूध यथा शीघ्र पूरी मात्रा में निकाल लिया जाय।

(5) अधिक अण्डा उत्पादन बनाए रखने हेतु अनुत्पादक मुर्गियों की छँटनी कर दिया जाय।

(6) ब्रायलर पालक एक दिवसीय चूजों की ब्रूडिंग पर विशेष ध्यान देकर तापमान का उचित निर्धारण करें जिससे सर्दी से होने वाली मृत्यु को रोका जा सके तथा खिड़कियों पर टाट अथवा बोरे का पर्दा लगाकर सदी से बचाव करें।

संकलनकर्ता : डॉ. अनिल कुमार, सह प्राध्यापक, प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के

प्रश्न : आलू की फसल में कौन–कौन से रोग लगते हैं?

(श्री संजय कुमार सिंह, धरमगंज, जनपद अयोध्या)

उत्तर : आलू की फसल में मुख्यता अंगमारी काला कोढ़, जीवाणुज, मृदु गलन, सामान्य स्कैब, मोजैक, लीफ रोल आदि लगते हैं। आलू में बुवाई 40 दिन बाद प्रायः अगेती अंगमारी का आक्रमण होता है। पत्तियों पर काले धब्बे जिनमें चूड़ीदार गड़रियाँ (रिंग) दिखाई पड़ती हैं। प्रकोप अधिक होने पर कई धब्बे आपस में मिलकर विकराल रूप धारण कर लेती हैं। पिछेती अंगमारी (झुलसा) देर से आरम्भ होती है। दिसम्बर या जनवरी के महीने में जब तापमान नीचे जाता है और नमी 60 प्रतिशत से अधिक हो जाती है एवं आकाश में बादल छाये रहते हैं या हल्की वर्षा होती रहती है ऐसी अवस्था में यह रोग भयंकर रूप धारण करता है। पत्तियों पर नोक या किनारे से जल सिक्त धब्बे बनते हैं और अनुकूल वातावरण होने पर सम्पूर्ण पौधा तीन–चार दिन में समाप्त हो जाता है। ऐसे समय वर्षा होने से मिट्टी कन्दों पर से हट जाता है और बीमारी का आक्रमण कन्दों तक हो जाता है जिसके कारण कन्दों के ऊपर कत्थई रंग के धब्बे बनते हैं।

प्रश्न : बटेर मुर्गियाँ अण्डा कब देना शुरू करती हैं तथा साल में कितने अण्डे देती हैं?

(श्री गया प्रसाद यादव, जगदीशपुर, अमेठी)

उत्तर : बटेर मुर्गियाँ छः सप्ताह की आयु में अण्डा उत्पादन करने योग्य हो जाती हैं। इनसे 6–7 सप्ताह की आयु में 50 प्रतिशत तथा 6–10 सप्ताह की आयु में 80 प्रतिशत अण्डा उत्पादन किया जा सकता है। अच्छी देखभाल करके बटेर से 250–300 अण्डे प्रति वर्ष प्राप्त किया जा सकता है। अण्डे का औसत भार 11 ग्राम होता है।

प्रश्न : प्रायः खेतों में आलू के कन्द गलने लगते हैं क्या करना चाहिए?

(श्री जगदीश कुमार, हलियापुर, सुल्तानपुर)

उत्तर : इसमें कन्द का विगलन होता है। यह गलन फसल की खुदाई के समय दिखाई पड़ती है। यदि अन्य निकटवर्ती कन्द गलने लगें तो यह जीवाणु मृदु गलन का सूचक है। बोने से पहले कटे पिटे कन्दों को कभी भी प्रयोग में न लायें साथ ही बीजोपचार करना न भूलें। जिस खेत में पहले वाली फसल में यह बीमारी आई हो उसमें फिर फसल न लें।

लेखकों से अनुरोध

- लेख भेजने से पहले यह सुनिश्चित कर लें कि आप पूर्वांचल खेती की वार्षिक सदस्यता ग्रहण कर लिए हैं, जो रूपया दौ सौ बीस (220.00) मात्र ही देय होगा। एक लेख में जितने भी लेखक होंगे सभी की सदस्यता अनिवार्य होगी।
- लेख भेजते समय पूर्वांचल खेती की सदस्य संख्या तथा सदस्यता अवधि सभी लेखकों को लेख के ऊपर लिखना अनिवार्य होगा।
- लेख फसलोत्पादन, सब्जी उत्पादन, बागवानी, गृह विज्ञान, मत्स्य अथवा पशुपालन आदि विषयों पर आधारित हो।
- लेख दो प्रतियों में डबल स्पेस में टाइप हो।
- लेख आकर्षक एवं अपने में ठोस हो।
- लेख आँकड़े से भरपूर हो।
- सम्बन्धित माह तथा मौसम की जानकारी से छः माह पूर्व प्रेषित हो।

प्रधान सम्पादक

पंजीयन संख्या - 54461/91 डाक पंजीयन संख्या एल. डब्लू./एन.पी. 34

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

द्वारा

कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र

के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रामोपयोगी पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य रु.
आधुनिक मधुमक्खी पालन एवं प्रबन्ध	20.00
जिमीकन्द की खेती	15.00
मशरूम उत्पादन एवं उपयोगिता	12.00
किसानोपयोगी फसल सुरक्षा तकनीक	50.00
फसल उत्पादन तकनीक	35.00
जीरो टिल सीड कम फर्टी ड्रिल	10.00
फल–सब्जी परीरक्षण एवं मानव आहार	50.00
गन्ने की आधुनिक खेती	15.00
जीरो टिलेज गेहूँ बुवाई की एक विश्वसनीय तकनीक	20.00
केचुआ पालन (वर्मीकल्चर) एवं वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन	10.00
व्यावसायिक कुक्कुट (ब्रायलर) उत्पादन	20.00
फसलों के सूत्रकृमि रोग एवं उनका वैज्ञानिक प्रबन्धन	25.00
आय संवर्धन हेतु प्रमुख सब्जियों की उत्पादन तकनीक	25.00
गृहणियों के लिए बेकिंग कला	25.00
स्वच्छ दूध उत्पादन तकनीक एवं उसका महत्व	20.00
गायों एवं भैसों के मुख्य रोग, टीकाकरण एवं संतुलित पशु आहार	20.00
मछली पालन	40.00
फसल अवशेष प्रबंधन	30.00

प्रति रूपये 25/–मात्र

मुद्रित

सेवा में,
श्री/श्रीमती

प्रेषक:
प्रसार निदेशालय
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या की ओर से प्रो. ए.पी. राव निदेशक प्रसार द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित